ओ३म्
वैदिक विवाह पद्धति
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओ३म्

वैदिक विवाह-पद्धति

विधिप्रणेत :
महर्षि दयानन्द सरस्वती

व्याख्याकार :
परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

भूमिका

वैदिक धर्म में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। मानव-जीवन को उच्च, दिव्य, महान् एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए महर्षि दयानन्द ने 'संस्कारविधि' में सोलह संस्कारों का विधान किया है। सभी संस्कार महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु उन सभी में विवाह-संस्कार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः यही वह संस्कार है जो अन्य सभी संस्कारों का आधार है।

वर्त्तमान समय में संस्कारों की घोर उपेक्षा हो रही है। आज सोलह संस्कारों के स्थान पर दो-तीन संस्कार ही रह गये हैं और वे भी विधिपूर्वक नहीं कराये जाते। वर-वधूपक्ष के लोग तो खाने और खिलाने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं, वही उनकी दृष्टि में मुख्य है, संस्कार गौण है। गौण ही नहीं, उनकी इच्छा तो यह होती है कि संस्कार किसी प्रकार ५-७ मिनट में ही समाप्त हो जाए।

दूसरी ओर संस्कार करानेवाला पण्डित-वर्ग भी घास काटता है। पहले की क्रिया पीछे और पीछे की क्रिया पहले, उल्टे-सीधे मन्त्र बोल और क्रिया कराकर संस्कार समाप्त करा दिया जाता है।

संस्कारों में विवाह-संस्कार सबसे लम्बा है। इसमें प्रक्रियाएँ भी बहुत हैं और अनेक प्रक्रियाओं के कारण इसमें जटिलता भी आ गई है। उस जटिलता को दूर करने के लिए ही हमने महर्षि दयानन्द-प्रणीत पद्धति की व्याख्या यहाँ प्रस्तुत की है। इस पद्धति में पीछे पृष्ठ उलटने की आवश्यकता नहीं पड़ती। एक मन्त्र जितनी बार भी पद्धति में आया है, उसे उतनी ही बार यहाँ लिख दिया गया है। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पाठक एवं विद्वज्जन इसे उपयोगी पाएँगे।

संस्कार में जितनी भी विधियाँ हैं, उन सबकी व्याख्या

हमने विधि से पूर्व दी है। यहाँ दो बातों का निर्देश आवश्यक है। एक—क्या विवाह में पत्नी को वामाङ्ग में बैठाया जाए? दूसरे—परिक्रमा करते समय चलने का क्रम क्या हो, आगे कौन चले, वर या वधू? दोनों प्रश्नों की मीमांसा यहाँ की जाती है—

विवाह में पत्नी का स्थान

विवाह में महर्षि दयानन्द ने पत्नी का स्थान सर्वत्र पति के दाहिनी ओर माना है। सर्वप्रथम मधुपर्क विधि के पश्चात् जब वर-वधू यज्ञशाला में प्रविष्ट होते हैं, वहाँ महर्षि लिखते हैं—

"दोनों वर-वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिणभाग में वधू और वधू के वामपक्ष में वर बैठ के वधू—'**ओं प्र मे पतियानः......**' इस मन्त्र को बोले।"

'लाजाहोम' की विधि पूर्ण होने के पश्चात् ऋषि फिर लिखते हैं—

"पश्चात् वर, वधू को दक्षिणभाग में रखके कुण्ड के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठके वर—'**ओं प्रजापतये स्वाहा**'—इस मन्त्र को बोलके स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे।"

विवाह-विधि पूर्ण होने के पश्चात् जब वर और वधू प्रस्थान करते हैं, वहाँ ऋषि लिखते हैं—

"और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिणबाजू वधू को बैठावे।"

इतना ही नहीं, महर्षि दयानन्द ने तो घर में पहुँचकर जो यज्ञ होता है वहाँ भी पत्नी को दक्षिणभाग में बैठाने का निर्देश किया है—

"यज्ञकुण्ड के पश्चिमभाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिणभाग में पूर्वाभिमुख बैठावे।"

महर्षि का यह विधान स्मृतियों के अनुसार ही है। यहाँ हम स्मृतियों के कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं—

कन्यादाने विवाहे च प्रतिष्ठायज्ञकर्मणि।
सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणातः स्मृता॥

—व्याघ्रपादस्मृति ८४

कन्यादान, विवाह और भवनादि के शिलान्यास आदि सभी धर्मकार्यों में पत्नी का स्थान सदा दक्षिण में माना गया है।

श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा॥

—लघ्वाश्वलायनस्मृति ६।११

श्राद्ध, यज्ञ और विवाह में पत्नी का स्थान वर के दक्षिणभाग में होता है। यहाँ श्राद्ध से तात्पर्य पौराणिकों के मृतक श्राद्ध से नहीं है। श्राद्ध का तात्पर्य है नान्दीश्राद्ध। यह श्राद्ध विवाह–संस्कार से पूर्व होता है। इसमें ब्राह्मणों को गोदान किया जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के विवाह से पूर्व भी महाराज दशरथ ने नान्दीश्राद्ध करके उसमें ब्राह्मणों को गौएँ प्रदान की थीं। अपनी बात की पुष्टि के लिए हम एक और प्रमाण देते हैं—

नान्दीश्राद्ध, सोमयाग और मधुपर्क (विवाह) में पत्नी का स्थान वर के दक्षिण में होता है।

इस प्रकार के और भी अनेक प्रमाण हैं। विस्तारभय से इतने ही प्रमाण पर्याप्त हैं।

जो विद्वान् पत्नी को वामाङ्ग में बैठाते हैं वे कहते हैं कि शरीर में हृदय बायीं ओर होता है, अतः स्त्री को वामाङ्ग में बैठाकर वह यह सूचित करता है कि मैं गृहस्थ में पत्नी को वही स्थान दूँगा जो शरीर में हृदय का है। सुनने और पढ़ने में ये व्याख्याएँ अच्छी लगती हैं, परन्तु हैं सब अशास्त्रीय।

कुछ लोगों की आपत्ति है कि जब स्त्री को दक्षिण में बैठाने का ही विधान है तो शास्त्रों में उसे वामाङ्गी क्यों कहा है? इस भ्रान्ति का कारण है 'वाम' शब्द का अर्थ। वाम का अर्थ प्रिय, सुन्दर और मनोहर भी होता है। वस्तुतः 'वाम'

का मूल अर्थ सुन्दर ही था। कालक्रम से मूल अर्थ गौण हो गया। 'वाम' का अर्थ यदि उल्टा या बायाँ ही है तो फिर वामलोचना का क्या अर्थ होगा? क्या वामलोचना का अर्थ टेढ़ी आँखवाली होगा या जिसकी दाहिनी आँख फूट गई है? वामलोचना का अर्थ है सुन्दर नेत्रोंवाली। इसी प्रकार वामाङ्गी का अर्थ है—सुन्दर अङ्गोंवाली।

प्रदक्षिणा में आगे कौन रहे?

अब दूसरी समस्या को लीजिए। प्रदक्षिणा के समय आगे कौन चले, वर या वधू? पौराणिक परिपाटी यह है कि वे तीन प्रदक्षिणाओं में कन्या को आगे चलाते हैं और चौथी परिक्रमा में वर को। पौराणिकों की मान्यता है कि धर्म, अर्थ और काम—ये तीनों स्त्रियों में अधिक होते हैं, अतः प्रथम तीन परिक्रमाओं में वह आगे रहती है; परन्तु उसे मोक्ष का अधिकार नहीं है, अतः चौथी परिक्रमा में वर आगे हो जाता है। यह सब विधान और कल्पना अवैदिक ही है। आर्यजगत् में भी प्रायः यही पौराणिक परिपाटी प्रचलित है, जो सर्वथा हेय एवं त्याज्य है।

वर और वधू में कौन आगे चले, महर्षि दयानन्द ने स्पष्ट शब्दों में इस विषय पर कुछ नहीं लिखा है; परन्तु सम्पूर्ण विवाह-विधि का सूक्ष्म आलोडन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि परिक्रमा करते समय वर आगे और वधू पीछे रहनी चाहिए। यह बात निम्न विधियों से झलकती है।

जिस समय वर और वधू स्वागत, मधुपर्क और वस्त्र-धारण की विधि के पश्चात् **'यदैषि मनसा दूरं.....'** इत्यादि तीन मन्त्रों को बोलकर यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर यज्ञवेदी पर बैठते हैं, उस समय वधू कहती है—**प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पताम्।** अब तो पति के आचार का मार्ग, पति के कुल एवं मर्यादा का मार्ग ही मेरा जीवन-पथ बनेगा।

पति का मार्ग पत्नी का जीवन-पथ तभी बन सकता है जब पत्नी पति का अनुगमन करे, पति के पीछे चले।

विवाह-संस्कार में एक विधि है—अरुन्धती दर्शन। अरुन्धती दर्शन का तात्पर्य यह है कि जैसे अरुन्धती तारा सदा वसिष्ठ तारे के पीछे ही रहता है उसके आगे नहीं चलता, इसी प्रकार पत्नी को भी सदा पति के पीछे ही चलना चाहिए।

सभी परिक्रमाओं में पत्नी पीछे चलेगी और पति आगे, इस विषय में दो प्रमाण हम यहाँ उपस्थित करते हैं—

अथर्ववेद का सम्पूर्ण चौदहवाँ काण्ड विवाह-सम्बन्धी है। वहाँ कहा है—

भगो राजा पुर एतु प्रजानन्।

—अथर्व० १४।१।५९

प्रजा की कामनावाला यह ऐश्वर्यशाली राजा (वर, दूल्हा) पुर एतु—आगे-आगे चले।

और एक अकाट्य प्रमाण लीजिए—

अग्निं प्रदक्षिणीकुर्वन् वधूमनुगमयेत्॥

—खादिरगृह्य० रुद्रस्कन्दवृत्तिसहितम् १।३।२४

वर अग्नि की प्रदक्षिणा करता हुआ वधू को पीछे चलाए। भूमिका लम्बी हो रही है, अतः यहीं विराम देता हूँ।

विदुषामनुचरः

—जगदीश्वरानन्द सरस्वती
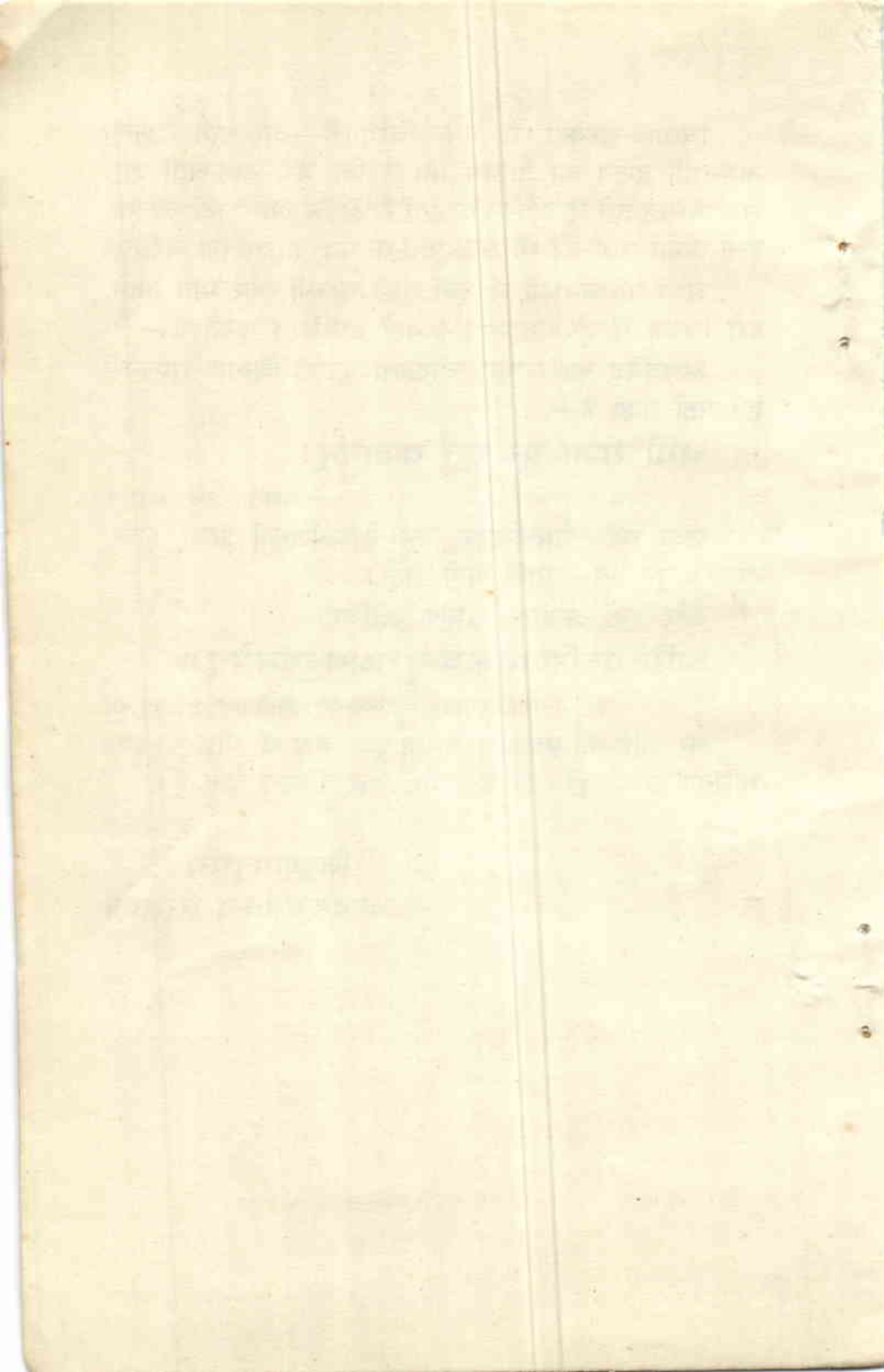
गृहस्थ के सुमन-गुच्छ

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै स्योना पुष्टायैषां भव॥

—अथर्व० १४।२।२७

हे वधू! तू श्वसुरों के लिए, पति के लिए, कुटुम्ब के लिए और घर की सब प्रजाओं के लिए सुखदायिनी हो। हे सुमङ्गली! तू घर के सभी व्यक्तियों का पोषण करनेवाली हो।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

—ऋ० १०।८५।४६

हे वधू! तू सास-ससुर, ननद और देवरों के हृदय की रानी बनकर इस घर में निवास कर।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ॥

—अथर्व० १४।१।२२

हे दम्पती! तुम दोनों इस गृहस्थ-जीवन में सदा मिलकर रहो, कभी एक-दूसरे से पृथक् मत होओ। पुत्र-पौत्रों और नातियों के साथ हँसते और खेलते हुए, अपने उत्तम घर में आनन्द-विभोर होते हुए पूर्ण आयु को भोगो।

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ। सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः॥

—अथर्व० १४।२।४३

हे वर-वधू! तुम दोनों सुखकारक गृह में सदा सजग एवं सावधान रहते हुए, प्रसन्न और प्रमुदित होते हुए, स्नेह से सदा सिक्त रहते हुए, सदाचारी सन्तानों से युक्त होते हुए, श्रेष्ठ एवं दिव्य गृहस्थ जीवन बिताते हुए, जीवन को सार्थक बनाते हुए, दीर्घ जीवन प्राप्त करो।

"अन्नं ह प्राणं शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः। सखा ह जाया....... ज्योतिर्हि पुत्रः...... पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा...... नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति.....।" —ऐतरेयब्रा० ७।१३

प्राण अन्न के समान सुखदायी है। घर शरण=आश्रय के समान सुखदायी है। स्वर्ण सुन्दर रूप के समान सुखदायी है। विवाह अपने दुग्ध-आदि से सुख देनेवाले गौ-आदि पशुओं की भाँति सुखदायी है। स्त्री सच्चे मित्र की भाँति सुख देनेवाली है। पुत्र प्रकाश की भाँति चाँदना छिटकाकर सुख देनेवाला है। पति गर्भरूप से अपनी स्त्री में प्रवेश करता है। जिसके पुत्र नहीं है उसका सांसारिक सुख भी फीका ही है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥
सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

—मनु० ३।५६, ५७, ६०

जिस परिवार में स्त्रियों का आदर-सम्मान होता है, वहाँ दिव्य गुण, दिव्य भोग और उत्तम सन्तान उत्पन्न होते हैं और जहाँ स्त्रियों का तिरस्कार होता है, उनकी सब क्रियाएँ निष्फल होती हैं।

जिस कुल में स्त्रियाँ शोकातुर रहती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है। जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न, प्रमुदित एवं सन्तुष्ट रहती हैं, वह कुल सदा फूलता-फलता और सर्वविध उन्नति करता है।

जिस कुल में पति पत्नी से और पत्नी पति से सदा प्रसन्न रहती है, उस कुल में निश्चय ही सदा कल्याण होता है।

॥ ओ३म् ॥

वैदिक विवाह : एक विवेचन

गृहस्थाश्रम सब आश्रमों में मुख्य और श्रेष्ठ है। इस आश्रम का आरम्भ विवाह से होता है।

विवाह क्या है?

वैदिक विवाह एक उच्चकोटि का धार्मिक सम्बन्ध है। विवाह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—वि+वाह। 'वि' विशेषता का द्योतक है और 'वाह' का अर्थ है यान। विवाह एक ऐसा शकट है, जिसमें स्त्री और पुरुष दो पहियों के समान हैं, जिनमें पूर्ण साम्य, सङ्गति और सद्गति का होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में हम यूँ कह सकते हैं—

"जब दो प्राणी प्रेमपूर्वक आकर्षित होकर अपने आत्मा, हृदय और शरीर को एक-दूसरे को अर्पित कर देते हैं, तब हम सांसारिक भाषा में उसे विवाह कहते हैं।"

विवाह का एक अर्थ यह भी है कि गृहस्थ के उत्तरदायित्वों को 'वि' विशेषरूप से वाह=वहन करना। विवाह के अन्य अर्थ हैं "ले-जाना" और "प्रयत्न करना"। तात्पर्य यह है कि विवाह उस क्रिया का नाम है जिसके द्वारा स्त्री-पुरुष को विशेष रीति से गृहस्थाश्रम में ले-जाते हैं अथवा उसमें विशेष प्रयत्न करते हैं।

विवाह किन कुलों के साथ होना चाहिए? महर्षि मनु कहते हैं—

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च॥

—मनु० ३।६, ७

चाहे गौ, बकरी, भेड़ (पहले पशु-धन से परिवार की समृद्धि आँकी जाती थी; अब महल-अटारी, नौकर-चाकर, कार-स्कूटर आदि से) धन और अन्न से कितने ही समृद्ध कुल हों, तो भी विवाह-सम्बन्ध में निम्न दश कुलों का त्याग कर दे। वे दस कुल ये हैं—१. सत्क्रिया से हीन, २. सत्पुरुषों से रहित, ३. वेदाध्ययन से विमुख, ४. जिस कुल में शरीर पर बड़े-बड़े लोम हों, ५. जिस कुल में बवासीर हो, ६. जिस कुल में राजयक्ष्मा हो, ७. जिस कुल में मन्दाग्नि, ८. मृगी, ९. श्वेतकुष्ठ और १०. गलितकुष्ठ हो, ऐसे कुल की कन्या के साथ विवाह न करें, क्योंकि ये रोग और दुर्गुण विवाह करनेवाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं।

परन्तु आज तो विवाह करते समय चमड़ी और दमड़ी देखी जाती है। डारविन महोदय ने ठीक ही लिखा है—

Man sees with scrupulous care the character and pedigree of his horse, cattle and dogs, before he matches them, but when he comes to his own marriage he rarely or never takes such care.

जिस समय मनुष्य अपने घोड़े, पशु और कुत्तों को मिलाता है तब वह उनके गुण, स्वभाव, बल, कद और नस्ल को बड़ी सावधानी से देखता है, परन्तु जब वह अपने विवाह-सम्बन्ध की ओर आता है तब इस ओर कोई ध्यान नहीं देता अथवा बहुत कम ध्यान देता है।

वैदिक धर्म में वर एवं वधू के गुण, कर्म, स्वभाव का मिलान करने पर बड़ा बल दिया गया है। पाश्चात्य डॉक्टर मैगनस हिर्श फील्ड (Dr. Magnus Hirshfield) ने भी इस विषय में बहुत सुन्दर लिखा है—

Happy marriages are not made in heavens but in the laboratory, both the man and woman should be carefully examined not only with regard to their fitness to marry but whether they are fit to marry each other.

सुखी विवाह स्वर्ग में नहीं, अपितु रसायनशालाओं में

होते हैं। पुरुष और स्त्री की वहाँ जाँच होनी चाहिए, न केवल इस सम्बन्ध में कि वे विवाह योग्य हैं, अपितु इस सम्बन्ध में भी कि वे दोनों एक-दूसरे को प्रसन्न रखने की योग्यता भी रखते हैं या नहीं।

विवाह-संस्कार

गृहस्थाश्रम में प्रवेश का नाम विवाह-संस्कार है। हमारे शास्त्रों के अनुसार विवाह-संस्कार एक अत्यन्त पवित्र और महत्त्वपूर्ण संस्कार है। विवाह-संस्कार का वैदिक क्रम इस प्रकार है—

वर का स्वागत

विवाह के दिन संस्कार के समय जब वर वधू-गृह में उपस्थित होता है, उस समय वधू सबसे पूर्व "मैं आपका स्वागत करूँगी"। ऐसा कहकर वर के गले में माला पहनाती है। माल्य-अर्पित करते समय वधू के हृदय के भावों को पं० प्रकाशचन्द्र 'कविरत्न' ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

हे देव! आपके स्वागत को, मैं सुमन-माल ले आज खड़ी।
अखिलेश्वर की अनुकम्पा से, आई है सुन्दर सुखद घड़ी॥
आशा के जल से सींच हरी की मैंने जो जीवन-डाली।
वह आज आपके चरणों में मैंने है अर्पित कर डाली॥
है यही विनय मैं हूँ अबोध, त्रुटियों पर देना ध्यान नहीं।
कर सकी आपके स्वागत का, किञ्चित् समुचित सामान नहीं॥
इस सुमन-माल में ही गुम्फित, अनुराग-भरा मेरा मन है।
स्वीकार करो, स्वीकार करो, आदर के साथ समर्पण है॥

माला अर्पण करने के पश्चात् वधू वर को बैठने के लिए आसन, पैर एवं मुख धोने के लिए जल देने के पश्चात् आचमन के लिए जल देती है, तदनु खाने के लिए मधुपर्क देती है।

यह वस्तुतः दिनभर के कार्यों से थककर लौटे हुए पति की सेवा की विधि है। जब भी पति घर पर आएँ, पत्नी को हँसते एवं मुस्कराते हुए उनका स्वागत-सत्कार करना चाहिए।

घर में चाहे कितने ही नौकर–चाकर हों, परन्तु पति की सेवा पत्नी को स्वयं ही करनी चाहिए।

घर में आये हुए अन्य अतिथियों की सेवा भी इसी प्रकार करनी चाहिए।

वर महोदय आसन पर बैठने से पूर्व निम्न मन्त्र का उच्चारण करता है—

वर्षोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः।
इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति॥

—पारस्करगृह्यसूत्र १।३।८

मैं अपने बराबरवालों में ऐसे ही श्रेष्ठ हूँ जैसे नक्षत्रों में सूर्य। जो कोई मुझे नीचा दिखाना चाहता है, मुझे अपने वश में करना चाहता है, उसे मैं ऐसे ही कुचल डालूँगा जैसे इस आसन को अपने पैर के नीचे दबा रहा हूँ। इस क्रिया को करता हुआ वर अपने आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के शत्रुओं को कुचल देने का सङ्केत कर रहा है।

पैर धोते एवं मुख प्रक्षालन करते हुए वर यह भावना करता है कि हे जल! तू अन्न का सारभूत रस है। मैं रोगों की निवृत्ति के लिए तुझे ग्रहण करता हूँ। तुम्हारे द्वारा मैं अपने मनोरथों को सिद्ध करूँ। मुख धोने पर बिखरते हुए पानी को नीचे की ओर गति करते हुए देख और उसके गुणों का स्मरण कर वह कहता है—हे जल! मैं तुम्हें तुम्हारे अन्तिम आश्रय समुद्र में पहुँचाता हूँ, परन्तु तुम्हारा ही वीर्यरूप जो मेरे अन्दर शक्ति के रूप में विद्यमान है, वह मुझसे दूर न हो। मैं अपनी शक्ति की रक्षा में सदा सावधान रहूँ।

तीन आचमन करता हुआ वर सङ्कल्प करता है—

आ मागन् यशसा सꣳसृज वर्चसा। तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम्॥

—पार० १।३।१५

हे परमात्मन्! आप यश के साथ मुझे अच्छी प्रकार प्राप्त

हों और आपका आश्रय ग्रहण करनेवाले मुझे अपने तेज से युक्त कर दो। मैं प्रजा=सन्तानों का प्रेमपात्र बनूँ। गवादि पशुओं का स्वामी बनूँ और शरीर से स्वस्थ एवं नीरोग बनूँ।

मधुपर्क

मधुपर्क में दही, शहद और घी का प्रयोग होता है। इनका अनुपात इस प्रकार है—दही १२ भाग, शहद ८ भाग और घी ४ भाग। इन तीनों को मिलाकर कांसे के पात्र में रखना चाहिए। यह एक टॉनिक=रसायन, महौषधि है। इन तीनों पदार्थों के गुण निम्न हैं—

दधिगुण—गर्म, अग्नि-दीपक, स्निग्ध, बल और वीर्य को बढ़ानेवाला तथा वातनाशक है।

मधुगुण—शीतल, मधुर, स्वादु, अग्निवर्धक, व्रणनाशक और कफ को दूर करता है।

घृतगुण—कान्ति, तेज, लावण्य, बुद्धिवर्धक, विष और पित्तनाशक है।

मधुपर्क से गृहिणी को शिक्षा दी गई है कि पाकशाला में भोजन कैसा बनाना चाहिए। भोजन ऐसा हो जिसमें दही, शहद और घी के गुण हों। उपर्युक्त विवेचन के अनुसार भोजन ऐसा होना चाहिए—१. जो वात, पित्त और कफ—इन तीनों को सम रक्खे। इनमें विषमता आने से रोग आते हैं। २. वह भोजन आयु का बढ़ानेवाला और शरीर में शक्ति देनेवाला हो। ३. भोजन मधु की भाँति माधुर्य गुणयुक्त और रुचिकर हो। मधु में एक विशेषता और है। संसार के अन्य पदार्थ दूसरों को बिगाड़कर या समाप्त करके बनते हैं। जैसे गुड़ अथवा चीनी बनने पर गन्ना समाप्त हो जाता है; परन्तु मधु के बनने की प्रक्रिया यह है कि फूल आदि जिनसे मधु संगृहीत किया जाता है, वे भी नष्ट नहीं होते और मधु भी तैयार हो जाता है। इसी प्रकार गृहस्थ की आजीविका भी ऐसी होनी चाहिए जिसमें दूसरों का शोषण न हो, दूसरों का गला न काटा जाए।

वर मधुपर्क को अपने हाथ में लेकर यह वाक्य बोलता है—

ओम् मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ।।

—पार० १।३।१६

हे भोजन! मैं तुझे मित्र की दृष्टि से देखता हूँ।

खाने का पदार्थ जब भी हमारे सामने आये तब हम उसे मित्र की दृष्टि से देखें। अप्रसन्नता अथवा अरुचि से खाया गया बढ़िया-से-बढ़िया भोजन भी शरीर का अङ्ग नहीं बनता। जिस पदार्थ में खानेवाले की रुचि होती है, वह न केवल अधिक स्वादिष्ट ही लगता है, अपितु अधिक लाभदायक भी होता है। इसीलिए मनुजी ने कहा है—**दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च।** [मनु० २।५४] भोजन को देखकर सदा प्रसन्न होना चाहिए। मानो इसी सूक्ति का अनुवाद करते हुए हरदयाल एम०ए० लिखते हैं—Cheerfulness should be our guest at our meals. भोजन के समय प्रसन्नता भी हमारा अतिथि होना चाहिए।

मित्रता एवं प्रसन्नता की भावना करके भी वर ने मधुपर्क को खाना आरम्भ नहीं किया। वह मधुपर्क के पात्र को वाम हस्त में लेकर सर्वत्र मधुमय वातावरण की कामना करता है। वह प्रार्थना करता है—हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! वायु नदी, ओषधियाँ मधु गुणवाली हों। रात्रि और उषाकाल, पार्थिव लोक और अन्तरिक्ष-मण्डल हमारे लिए कल्याणकारी हों। वनस्पतियाँ माधुर्य गुणयुक्त हों। सूर्य हमारे लिए सुखकर होकर तपे और गवादि पशु खूब दूध देनेवाले हों।

ऐसी भावना करके वर उस मधुपर्क से पूर्व आदि चारों दिशाओं में और ऊपर की ओर छींटे देता है। इस क्रिया के कई भाव हैं—

१. १२ नवम्बर १९०५ को जब प्रिंस ऑफ वेल्स बम्बई में आये और बम्बई की देवियों ने उनका स्वागत किया, उस समय कटोरे में पानी भरकर सात बार उनके सिर से फेरकर चहुँ ओर उसके छींटे दिये गये थे। इसका भाव क्या था? इस सम्बन्ध में सभी अंग्रेजी समाचार-पत्रों ने लिखा था कि—

"इसका भाव यह है कि सर्वत्र वर्षा हो और दुर्भिक्ष न आये जिससे सबको सुख मिले"। ठीक इसी प्रकार मधुपर्क के छींटे देता हुआ वर यह भावना व्यक्त करता है कि मधुपर्क जैसे उत्तमोत्तम पदार्थों की सर्वत्र वृद्धि हो, सभी मनुष्यों को इस प्रकार के पदार्थ खाने को मिलें जिससे सभी नागरिक हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ और आनन्दित रहें।

२. अब तक वर-वधू ब्रह्मचर्याश्रम में थे। आज ये गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो रहे हैं। इनके ऊपर कुछ उत्तरदायित्व भी आ रहे हैं। गृहस्थियों का यह कर्त्तव्य है कि वे घर के छोटे-बड़े, नौकर-चाकर, सबको खिलाकर फिर भोजन करें। मधुपर्क खाने से पूर्व उसके छींटे देकर वर यही भावना व्यक्त कर रहा है।

३. पूर्व आदि चारों दिशाओं में और ऊपर की ओर मधुपर्क के छींटे देने से यह भावना भी व्यक्त हो रही है कि पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से अथवा दक्षिण से कोई भी विद्वान्, अतिथि अथवा कोई दीन-हीन, लूला-लङ्गड़ा, चाण्डाल, पापरोगी घर पर आ जाए तो उसे भी अपने भोजन में से भाग देना। न केवल मनुष्यों और पशुओं को ही अपितु आकाश में उड़नेवाले पक्षियों को भी अपने भोजन में से कुछ अंश देना।

मनुष्य को बाँटकर खाना है। उसे "**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः**"। संसार के पदार्थों का त्यागपूर्वक उपभोग करो—इस आदर्श को जीवन में चरितार्थ करना है। ऋग्वेद १०।११७।६ में कहा है—**केवलाघो भवति केवलादी।** अकेला खानेवाला तो पाप ही खाता है। कोश में '**अपञ्चयज्ञो मलिम्लुचः**', यज्ञ न करके सब-कुछ अकेले ही खा जानेवाले को चोर कहा है। मनुष्य को कोई भी भोग्य-पदार्थ उसके अकेले के प्रयत्न से प्राप्त नहीं होता, अतः अन्यों की सहायता से प्राप्त होनेवाले भोगों को बाँटकर खाना ही उचित है। प्रत्येक मनुष्य की यही भावना होनी चाहिए—**भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि।**

[आश्व० १।२४।१५] मैं तुझे केवल अपने लिए नहीं अपितु प्राणिमात्र के लिए ग्रहण करता हूँ।

छींटे देने के पश्चात् वर उस मधुपर्क को तीन पात्रों में विभक्त करते हुए यह सूचित करता है कि भोजन की थाली में एक नहीं कई कटोरियाँ होनी चाहिएँ। कई प्रकार के शाक और व्यञ्जन होने चाहिएँ।

गोदान

मधुपर्क-प्राशन के पश्चात् गोदान की विधि होती है। गौ भारतीय संस्कृति की प्रतीक है। गौ नहीं तो घर नहीं। यह गौ इसलिए दी जाती है कि इसके दुग्धादि पदार्थों का सेवन कर घर के सभी सदस्य नीरोग और स्वस्थ रह सकें। विवाह-अवसर पर गोदान का विधान कर ऋषि-मुनियों ने गोरक्षा का अमोघ उपाय ढूँढ निकाला था।

कन्यादान

गोदान की विधि के पश्चात् कन्या का पिता गोत्रोच्चारण-पूर्वक अपनी कन्या का दक्षिण हस्त वर के दक्षिण हस्त में सौंपता है। इसी कृत्य को कन्यादान कहते हैं। वास्तव में यह कन्या का स्वीकरण है, दान नहीं। यहाँ पिता कन्या को जो अलङ्कार देता है, वह 'स्त्री-धन' ही माना जाता है। संसार-यात्रा में कभी सङ्कट आने पर यह धन सहायक हो सकता है। इस रूप में पिता अपनी सम्पत्ति का कुछ अंश अपनी पुत्री को दे देता है—जोकि अन्य रूप में उसे नहीं मिलना है।

अनेक विद्वान् यहाँ शङ्का करते हैं कि कन्या का दान नहीं हो सकता। इस प्रश्न का उत्तर 'पारस्कर-गृह्यसूत्र' के कर्कभाष्य में यह दिया है कि वास्तविक दान स्वत्व-त्यागपूर्वक परस्वत्वापादन कहाता है, परन्तु कन्या कभी भी परस्वत्व नहीं हो सकती, क्योंकि विवाह के पश्चात् भी **ममेयं कन्या**—यह मेरी पुत्री है—ऐसा व्यवहार होता है। इसी प्रकार जहाँ पुत्र-दान कहा गया है वहाँ भी गौण दान ही समझना चाहिए।

शुद्ध खादी का धारण

कन्या-ग्रहण के पश्चात् वर वधू को अपने घर के कते-बुने वस्त्र धारण करने के लिए देता है और स्वयं भी अधोवस्त्र=धोती और दुपट्टा धारण करता है। घर में कते-बुने शुद्ध खादी के वस्त्रों का सबसे बड़ा सौन्दर्य यह है कि ये वस्त्र मातृ-स्नेह से सिक्त होते हैं, जिस स्नेह की जड़-यन्त्रों द्वारा निर्मित वस्त्रों में गन्ध भी नहीं होती।

वस्त्र-धारण का मुख्य प्रयोजन तो शीतोष्ण-निवारण है तथापि वस्त्र धारण करते समय बोला गया मन्त्र—**परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि।** शारीरिक स्वास्थ्य और शोभा=यशरूप प्रयोजन का भी सङ्केत कर रहा है। वस्त्रों को धारण करके शरीर-रक्षण द्वारा एक ओर जहाँ मैं दीर्घायु को प्राप्त करूँ, वहाँ दूसरी ओर मुझे यश भी प्राप्त हो, सभा-संस्थाओं में मैं हास्यास्पद न बन जाऊँ। इसके लिए यह आवश्यक है कि वस्त्र मैले न हों, फटे हुए न हों और ठीक माप के सिले हुए हों, ढीले-ढाले न हों। God makes and apparel shapes—परमात्मा मनुष्य को बनाता है और वस्त्र उसे शोभान्वित करते हैं।

कलश-स्थापन एवं दण्ड-पुरुष

उधर वर-वधू वस्त्र धारण करते हैं, इधर वर-पक्ष का एक पुरुष जल से पूर्ण एक कलश लेकर यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलश को अपने आगे भूमि पर रखकर बैठ जाता है। कलश-स्थापन की आवश्यकता इसलिए है कि यज्ञ करते हुए यदि कपड़े आदि को आग लग जाए तो उस समय जल की आवश्यकता पड़ेगी। उस समय पानी के लिए दौड़ना न पड़े, अतः उसकी व्यवस्था पहले ही कर लेनी चाहिए। इसी प्रकार विवाह-संस्कार की रक्षा के लिए एक दण्डधारी पुरुष की नियुक्ति की जाती है। दण्डहस्त पुरुष इस बात का भी सङ्केत कर रहा है कि यदि कभी किसी मनचले पुरुष ने कोई भी अनुचित

चेष्टा कर इस वधू के साथ छेड़खानी की तो उसका स्वागत बातों से न करके दण्डे से किया जाएगा। हे वधू-पक्ष के लोगो! आप अपनी कन्या को किसी ऐसे स्थान पर नहीं भेज रहे हैं जहाँ उसकी प्रतिष्ठा खतरे में हो, जहाँ उसकी रक्षा करनेवाले पुरुष न हों।

ये दोनों पुरुष वर-पक्ष के होने चाहिएँ तथा विवाह की समाप्ति-पर्यन्त उत्तराभिमुख बैठे रहें।

प्रतिज्ञा-मन्त्र

वस्त्र-धारण के पश्चात् जब कन्या वर के समक्ष जाती है उस समय वर-वधू दोनों निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हैं—

ओम् समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥

—ऋ० १०।८५।४७

हे यज्ञशाला में बैठे विद्वान् लोगो! हम दोनों अपनी प्रसन्नता से गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर रहे हैं। हम दोनों के हृदय जल के समान मिल जाएँ। जैसे प्राणवायु सभी को प्रिय है, उसी प्रकार हम भी एक-दूसरे को प्रिय बनेंगे। जैसे परमात्मा इस सारे संसार को धारण कर रहा है, उसी प्रकार हम भी एक-दूसरे को धारण करेंगे। जैसे उपदेशक अपने श्रोताओं से प्रेम करता है, उसी प्रकार हम भी एक-दूसरे से दृढ़ प्रेम करेंगे।

विवाह की मूल भावना है दो हृदयों का मिलन। इस मिलन के लिए उक्त मन्त्र में जो उपमा दी गई है वह अनुपम है। संसार में इससे श्रेष्ठ और कोई उपमा हो ही नहीं सकती। यहाँ कहा है—"हमारे हृदय इस प्रकार मिल जाएँ जैसे दो जल आपस में मिल जाते हैं"। संसार में अन्य पदार्थ मिल जाएँ तो उन्हें पृथक् किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में रेत में चीनी मिल जाए तो चींटी उसे पृथक् कर देती है। दूध में पानी मिल जाए तो हंस नामक पक्षी उसे पृथक् कर देता है; परन्तु संसार में न तो कोई ऐसा पशु-पक्षी है और

न आज तक वैज्ञानिक ही किसी ऐसे यन्त्र का आविष्कार कर सके हैं जो दो कुओं अथवा एक नदी और एक तालाब के मिले हुए जल को पृथक् कर सके। जैसे दो जल मिलकर अपना नाम और रूप छोड़कर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदय भी मिलकर एक हो जाएँ। "वधू का मन वर और वर का मन वधू के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष अथवा स्त्री के लिए न हो।"

पत्नी के प्रमुख कर्त्तव्य

विवाह-संस्कार के पश्चात् वधू वर के साथ पतिगृह में जाएगी, वहाँ उसका व्यवहार कैसा हो—इस भावना को वर निम्न मन्त्र द्वारा प्रकट करता है—

ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ —ऋ० १०।८५।४४

पति से विरोध न करनेवाली हे वरानने! सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की कृपा और अपने पुरुषार्थ से तू सबके साथ प्रेममय व्यवहार करनेवाली हो। पशुओं के लिए कल्याणकारिणी बन। पवित्र अन्तःकरण से युक्त और सदा पुष्प की भाँति हँसते एवं मुस्कराते हुए रहना। शुभ गुणों, तेज और विद्या से सुप्रकाशित रहना। वीर पुत्रों को ही जन्म देना। देवरों=छोटे भाइयों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना। संक्षेप में, घर के मनुष्यों और पशुओं सबके साथ ऐसा व्यवहार करना कि सबको सुख की प्राप्ति हो।

पत्नी इसका उत्तर देती है और वह भी क्रियात्मक रूप में। वर और वधू दोनों यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके अपने आसनों पर बैठते हैं और कन्या कहती है—

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पताᳬशिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्॥ —गो०गृ० २।१।२०

मेरे पति का जो मार्ग है, वही मेरा मार्ग है। आप जैसा

मुझे आदेश देंगे मैं उसका पालन करूँगी जिससे मैं सुख पाती हुई निर्विघ्न होकर मोक्ष को प्राप्त करूँ।

पत्नी ने परिक्रमा में पति के पीछे चलते हुए भी यही भावना व्यक्त की है कि मैं सदा आपकी अनुगामिनी रहूँगी। मैं सदा आपकी आज्ञाओं का पालन करती रहूँगी।

अग्निहोत्र

वैदिक धर्मियों के सभी कृत्य अग्नि को साक्षी करके किये जाते हैं, अतः विवाह की प्रमुख विधियों के आरम्भ होने से पूर्व यहाँ सामान्य होम प्रारम्भ होता है। इसी समय पुरोहित की स्थापना भी होती है।

पाँच विशेष आहुतियाँ

सामान्य यज्ञ के पश्चात् पाँच विशेष आहुतियाँ देने का विधान है। इन पाँच आहुतियों को देते समय वधू अपने दक्षिण हस्त को वर के दक्षिण कन्धे पर रखती है। ये पाँच आहुतियाँ घर में प्रतिदिन होनेवाले पञ्चमहायज्ञों की ओर सङ्केत करती हैं। प्रतिदिन प्रत्येक परिवार में यथाशक्ति इन यज्ञों का अनुष्ठान होना ही चाहिए। पत्नी अपने पति के कन्धे पर हाथ रखकर यह भावना व्यक्त करती है कि आपकी अनुपस्थिति में मैं इन यज्ञों को करूँगी, परन्तु इनमें जो व्यय होगा उसका उत्तरदायित्व आपको ही वहन करना होगा।

राष्ट्रभृत्, जया एवम् अभ्यातन होम

गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते ही नवदम्पती पर अनेक उत्तरदायित्व आ जाते हैं। प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र का भरण-पोषण करे, अपने राष्ट्र को दृढ़ एवं शक्तिशाली बनाये। हमें अपने राष्ट्र को हर प्रकार से समुन्नत करना है, अतः वे राष्ट्रभृत् होम करते हैं। राष्ट्रभृत् मन्त्रों में वे प्रार्थना करते हैं—**स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु**—वह परमात्मा नः=हम सबके, मेरे अकेले के नहीं, ब्रह्म व क्षत्र की रक्षा करे।

तीसरा होम अभ्यातन है। अभ्यातन का अर्थ है—अपनी

सर्वाङ्गीण, सर्वविध उन्नति, अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवम् आत्मिक सभी शक्तियों का सम-विकास। अभ्यातन मन्त्रों की प्रार्थना है—**सा मा अवतु अस्मिन् ब्रह्मणि अस्मिन् क्षत्रे**—वह परमात्मा मा=मुझे इस ब्रह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति के विकास में सुरक्षित करनेवाला हो।

इस क्रम में एक सौन्दर्य है। यहाँ पहले सामूहिक प्रार्थना है और तदनु वैयक्तिक याचना है। इस क्रम से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति की अपेक्षा राष्ट्र का अधिक महत्त्व है। जहाँ राष्ट्रहित प्रमुख समझा जाता है, वहाँ राष्ट्रीय भावना की जागृति होकर राष्ट्र फूलता-फलता और उन्नति करता है। इसके विपरीत जहाँ व्यक्ति को प्रधानता मिल जाती है, वहाँ राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य का अपहरण हो जाता है, जय के स्थान पर राष्ट्र पराजय को प्राप्त होता है, फलस्वरूप उस राष्ट्र के नागरिक भी आक्रमणकारियों द्वारा पादाक्रान्त किये जाते हैं। व्यक्ति का कल्याण राष्ट्र की स्वतन्त्रता में ही है, परन्तु व्यक्ति का विकास भी आवश्यक है। हम एक भवन बनाने लगते हैं। यदि ईंटें कच्ची हैं तो भवन भी कच्चा ही बनेगा, ईंटें पक्की हैं तो पक्का। यदि किसी राष्ट्र के रहनेवाले दीन-हीन, मरियल और पागल हैं तो वह राष्ट्र भी उसी प्रकार का होगा। इसके विपरीत यदि राष्ट्र के व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ हैं तो राष्ट्र भी शक्तिशाली बनेगा, अतः राष्ट्र-निर्माण के लिए व्यक्ति का विकास परमावश्यक है। किसी ने कितना सुन्दर कहा है—

If everyone looks to his own reformation,
How very easy to reform a nation.

यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना सुधार कर ले तो राष्ट्र का सुधार होना बहुत सरल है।

एक व्यक्ति यदि केवल राष्ट्र-उन्नति की बात सोचता है, वैयक्तिक उन्नति की ओर ध्यान नहीं देता तो इसका परिणाम क्या होता है? ऐसे नेताओं के बच्चे एक-एक श्रेणी में कई-कई वर्ष अनुत्तीर्ण होते हैं। दूसरी ओर जब व्यक्ति केवल अपनी ही उन्नति की बात सोचता है, राष्ट्र की ओर से आँख बन्द

कर लेता है, तब व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण देश में अनाचार भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, चोरबाज़ारी, संग्रह की भावना आदि बुराइयाँ पनपती हैं। तब श्रेष्ठ मार्ग क्या है? मध्य-मार्ग ही श्रेष्ठ मार्ग है। जो व्यक्ति राष्ट्रीय उन्नति और वैयक्तिक उन्नति इन दोनों को ही अपने सम्मुख रखता है, संसार में उसी की जय और विजय होती है। इसीलिए जयाहोम इन दोनों यज्ञों के बीच में रखा गया है।

पुत्र-मृत्यु के विलाप का अभाव

इस होम-त्रय के पश्चात् आठ आज्याहुतियाँ और दी जाती हैं। इन मन्त्रों की मुख्य भावना है—१. पत्नी उत्तम पुत्रोंवाली हो, २. यह स्त्री पुत्र-सम्बन्धी दुःख को प्राप्त न हो, ३. **अशून्योपस्था**—इसकी गोद कभी पुत्रों से रहित न हो, ४. **प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः**—इसकी सन्तान दीर्घायुष्य को प्राप्त करे जिससे यह स्त्री **पौत्रमानन्दमभिविबुध्यताम्**=पुत्र-सम्बन्धी आनन्द को प्राप्त करे, ५. **मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थाद्**=ईश्वर की कृपा से तुम्हारे घर में रात्रि में कोई आर्तनाद=दुःख देनेवाला शब्द सुनाई न दे।

पाणि-ग्रहण—पति के कर्त्तव्य

यहाँ से विवाह की मूल क्रियाओं का आरम्भ होता है। पति पत्नी के दक्षिण हाथ को ग्रहण करके छह मन्त्र बोलता है। इन मन्त्रों की भावनाएँ मननीय हैं—

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥[1] —ऋ० १०।८५।३६

---

१. इस मन्त्र का कविता-अनुवाद देखिए—
हो जाओ सौभाग्यशालिनी पाओ तुम उत्तम सन्तान।
बढ़े विभव, मैं शुद्ध हृदय से हाथ पकड़ता मित्र समान॥
सुख में साथ बनो वृद्धा, गृहधर्म पालती रहो सुजान।
तुमको पूज्यजनों ने सौंपा मुझको ईश्वर-आज्ञा मान॥
तुम मेरी मैं हुआ तुम्हारा, बिके एक-दूजे के हाथ।
रखूँ प्रसन्न तुम्हें यह निश्चय सदा रहें सुख-दुःख में साथ॥

हे वरानने! ऐश्वर्य तथा सुसन्तान आदि सौभाग्य की वृद्धि के लिए मैं तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। तू मेरे साथ वृद्धावस्था-पर्यन्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर।

इसी प्रकार पत्नी कहे—हे वीर! मैं भी सौभाग्य की वृद्धि के लिए आपका हाथ ग्रहण करती हूँ। आप मेरे साथ वृद्धावस्था-पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिए।

सकल ऐश्वर्यों के स्वामी, न्यायकारी, सब जगत् के उत्पत्ति एवं धारणकर्त्ता परमात्मा और सभा-मण्डप में बैठे हुए विद्वज्जनों ने गृहस्थाश्रम के कर्मों के अनुष्ठान के लिए तुम्हें मुझे सौंपा है। आज से मैं आपके हाथ और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं।

भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्।
पत्नी त्वमसि धर्मणाऽहं गृहपतिस्तव॥

—अथर्व० १४।१।५१

हे प्रिय! ऐश्वर्यशाली, पुंसवन शक्ति से युक्त तथा धर्म-मार्ग में प्रेरक मैं तुम्हारा हाथ पकड़ रहा हूँ। तू धर्म से (सन्तानोत्पत्तिरूपी धर्म की दृष्टि से, न कि काम-वासना की तृप्ति की दृष्टि से) मेरी पत्नी, भार्या है और मैं धर्म से तेरा पति हूँ। हम दोनों मिलकर गृह-कार्यों को सिद्ध करें।

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्॥

—अथर्व० १४।१।५२

हे अनघे! सब जगत् के पालनकर्त्ता परमात्मा ने तुम्हें मुझे प्रदान किया है। मैं अपने इस कर्त्तव्य को कभी न भूलूँगा कि मुझे न्यायपूर्वक धनोपार्जन करते हुए तेरा भरण-पोषण करना है। हे प्रजावते! तू मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त सुखमय जीवन को धारण कर।

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्। तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया॥

—अथर्व० १४।१।५३

हे शुभानने! भोजन-सामग्री के साथ मैं श्रेष्ठ शिल्पियों द्वारा निर्मित सुखद वस्त्र एवम् आभूषण भी तुम्हें प्रदान करूँगा। ऐश्वर्यशाली सर्वजगदुत्पादक परमात्मा सूर्य की किरणों के समान कान्तिवाली तुझे पुत्रों से शोभायुक्त करे।

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा। बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु॥ —अथर्व० १४।१।५५

हे मेरे सम्बन्धी लोगो! जैसे विद्युत् और अग्नि, सूर्य और भूमि, अन्तरिक्षस्थ वायु, प्राण और उदान, ऐश्वर्य, सद्वैद्य और सत्योपदेशक, राजा, विद्वान्, प्रजाएँ, परमात्मा, वेदज्ञान, सोमलता आदि ओषधियाँ इस नारी को प्रजा से बढ़ाते हैं, वैसे ही आप भी अपने आशीर्वाद और मङ्गल-कामनाओं से इसे बढ़ाया करो। मैं भी प्रजा आदि के द्वारा इसे सदा बढ़ाया करूँगा।

इस मन्त्र में प्रजा-सहित नारी के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए विद्युत्, अग्निहोत्र, सूर्य एवं मिट्टी-चिकित्सा, शुद्ध वायु, प्राणायाम, धन-धान की समृद्धि आदि अनेक साधनों का उल्लेख है। यथा-अवसर इनका सेवन कर मनुष्य नीरोग एवं स्वस्थ रह सकते हैं।

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्म-नसः कुलायम्। न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्॥ —अथर्व० १४।१।५७

हे कल्याण-क्रोडे! मैं कुल की वृद्धि को देखता हुआ इस तेरे रूप को प्रीति से प्राप्त और इसमें प्रेम से व्याप्त होता हूँ। इसी प्रकार तू भी मुझमें प्रेम से व्याप्त हो। मैं चोरी-चोरी अकेला कभी भी पदार्थों का भोग नहीं करूँगा, इस भावना को भी कभी मन के अन्दर नहीं आने दूँगा। मैं अपने उत्कट पुरुषार्थ से उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के बन्धनों को दूर करता हूँ।

इन छह मन्त्रों को बोलकर वर-वधू को उठाता है।

तत्पश्चात् दोनों प्रज्वलित अग्नि की प्रदक्षिणा कर अपने स्थान पर खड़े हो जाते हैं और वर निम्न मन्त्र का उच्चारण करता है—

ओम् अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहम्।
सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै।
प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्।
ते सन्तु जरदष्टयः सं प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम्॥[1] —पा० १।६।३

हे प्रिये! मैं विष्णु हुँ, तुम लक्ष्मी। सचमुच तुम लक्ष्मी हो और तुम्हें पाकर आज मैं विष्णु बन गया हूँ। मैं संगीतमय सामवेद हूँ और तुम कवितामयी ऋचा=ऋग्वेद हो। मैं वर्षा करनेवाले सूर्य के समान हूँ और तू गर्भादि को धारण करनेवाली पृथिवी के समान है। आओ, हम दोनों प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें और साथ मिलकर वीर्य को धारण करें। उत्तम प्रजा को उत्पन्न करें और बहुत से पुत्रों को प्राप्त हों। वे पुत्र दीर्घजीवी हों। हम दोनों भी एक–दूसरे से प्रेम करनेवाले, उत्तम स्वास्थ्य से दमकते हुए, सदा प्रसन्नचित्त होकर सौ वर्ष तक

---

१. इस मन्त्र का कविता–अनुवाद भी निहारिए—
तुम लक्ष्मी हो, मैं तो अब तक था लक्ष्मी से हीन।
सचमुच तुम लक्ष्मी हो, मैं था बिना तुम्हारे दीन॥
सुभगे! तुम हो ऋचा वेद की, मैं हूँ स्वर का लास।
तुम हो सुजला–सुफला धरती, मैं निर्मल आकाश॥
आओ, बाँधें प्राण परस्पर ले विवाह का सूत।
दें दुनिया को मिलित शक्ति से रचकर कई सपूत॥
हम दोनों सुन्दर छवि लेकर रहें प्रेम में मग्न।
दोनों के मानस हों, मङ्गलमय भावों में लग्न॥
देखें शत शरदों की शोभा, जिएँ सुखी सौ वर्ष।
सुनें कोकिलों के कलरव में सौ वसन्त के हर्ष॥

एक-दूसरे को प्रेमपूर्वक देखते रहें, सौ वर्ष तक आनन्द से जीते रहें और सौ वर्ष तक एक-दूसरे के प्रिय वचनों को सुनते रहें।

शिला-आरोहण

प्रतिज्ञा-मन्त्रों के पश्चात् कन्या का भाई उसका दक्षिण पग उठाकर शिला पर चढ़वाता है। इस समय वर निम्न मन्त्र का उच्चारण करता है—

ओम् आरोहेममश्मानमश्मेव त्वं स्थिरा भव।
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः॥

—पार० १।७।१

हे देवि! तू इस शिला के ऊपर आरोहण कर और धर्म-कार्यों में इस शिला के तुल्य ही दृढ़ बन। गृहस्थ-जीवन में कभी आपत्तियाँ और सङ्कट आ जाएँ तो उनमें इस प्रकार दृढ़ रहना है जैसे चट्टान मूसलाधार वर्षा और तूफ़ान के थपेड़े खाकर भी दृढ़ रहती है।

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजिता॥

सुख हो अथवा दुःख, प्रिय हो अथवा अप्रिय, सदा अपराजित मन से, उत्साहपूर्वक अपने गन्तव्य की ओर बढ़ते ही जाना चाहिए।

तू अपने ऊपर आक्रमण करनेवालों का दृढ़ता से मुक़ाबला करना। इसके लिए तू अपने शरीर को वज्र के तुल्य कठोर बनाना।

भाई बहन के पैर को उठाकर शिला पर रखता है—इसमें भी एक रहस्य है। जब कोई व्यक्ति किसी के चरण पकड़ता है तो यह भाव प्रकट करता है कि मेरी लाज आपके हाथ में है। यहाँ भी बहन पतिकुल में जा रही है, अतः भाई उसके पैर पकड़ते हुए कह रहा है कि हमारे परिवार की लाज तेरे हाथ में है। वहाँ जाकर कोई ऐसा कार्य न करना जिससे हमारी अप्रतिष्ठा=बदनामी हो।

लाजा-होम

लाजा-होम विवाह की अति प्रमुख विधि है। इस विधि में कन्या का भाई अपनी बहन की अञ्जलि को शमीपत्र युक्त खीलों से भरता है और वह मन्त्रोच्चारपूर्वक उन्हें कुण्ड में डालती है। इस क्रिया में पति उसकी सहायता करता है; तात्पर्य यह कि दोनों मिलकर यज्ञकर्म किया करें। वधू जिन मन्त्रों का पाठ करती है उनकी भावनाएँ निम्न हैं—

१. हे न्यायकारी प्रभो! आप मुझे पितृकुल से छुड़ा रहे हैं, परन्तु मैं पतिकुल में सदा स्थिर रहूँ, वहाँ से कभी वियुक्त न होऊँ।

२. इन लाजाओं का होम करते हुए मेरी यह कामना है कि मेरा पति दीर्घजीवी हो और मेरे कुटुम्ब के लोग धन-धान्य आदि से समृद्ध हों।

३. हे पतिदेव! मैं आपकी समृद्धि के लिए इन खीलों से होम कर रही हूँ। प्रभु की कृपा से मेरा और आपका परस्पर दृढ़ अनुराग हो।

लाजा-होम के पश्चात् पत्नी की हस्ताञ्जलि पकड़ते हुए पति जिस मन्त्र का उच्चारण करता है, उसमें नारी की महत्ता का वर्णन करते हुए अन्त में कहा गया है—**तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः।** हे देवि! आज से मैं तेरे प्रति स्त्रियों के उत्कर्ष की गाथा का ही गान किया करूँगा।

यह तो हुई विधि, अब तनिक इसके रहस्य पर दृष्टिपात कीजिए। शमीपत्रयुक्त खीलों से अपनी बहन की अञ्जलि को भरता हुआ भाई यह आश्वासन दे रहा है कि—बहन! आज तू पिता के घर से विदा हो रही है। आज पिता का उत्तरदायित्व समाप्त हो रहा है और मेरा उत्तरदायित्व आरम्भ हो रहा है। तू जब-जब यहाँ आयेगी तब-तब मैं अपनी पवित्र कमाई से तेरी अञ्जलि को भरकर ही तुझे यहाँ से विदा करूँगा।

खीलों की आहुतियाँ दिलवाकर वर-वधू को विवाह की

वास्तविकता बड़े मार्मिक रूप से समझाई गई है। लाजा धान्यरूप होती है। उसमें तुष् और तण्डुल का संयोग होता है। इसमें वधू तुष् है और वर तण्डुल। जब तक दोनों मिले रहेंगे, तब तक दोनों की रक्षा है। जब तक तुष् तण्डुल से संयुक्त रहता है तब तक वह तण्डुल के भाव में बिकता है, किन्तु तण्डुल से अलग होकर उसका कोई मूल्य नहीं रह जाता। इसी प्रकार स्त्री जब तक पति के साथ रहती है तभी तक उसकी शोभा है। उधर तण्डुल तुष् से पृथक् होकर महँगा बिकता है, परन्तु अपनी उत्पादक शक्ति को खो देता है। इन चावलों को बोकर कोई भी कृषक अपनी अभीष्ट सिद्धि नहीं कर सकता। अंकुर उत्पन्न करने के लिए कितना ही महँगा चावल क्यों न हो, उसे तिरस्कृत भूसी का सहारा लेना ही पड़ता है। इसी प्रकार सन्तानेच्छुक पुरुष को अपनी सहधर्मिणी की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

धान को पहले एक स्थान पर बोकर उसकी पौध तैयार की जाती है फिर उस पौध को उठाकर दूसरे स्थान पर आरोपित किया जाता है, तभी वह फूलता-फलता है। इसी प्रकार कन्या भी पितृकुल में लालित एवं पालित होती है और पति-गृह में जाकर सन्तति से फूलती-फलती है।

शमीपत्रयुक्त लाजाओं का होम करती हुई कन्या यह भी सूचित करती है कि—स्वामिन्! आपका वंश शमी की भाँति कैसा ही हरा-भरा क्यों न हो, मेरे अनादर से आपकी स्थिति खीलों जैसी होगी। जैसे खीलों का अंकुर नहीं होता, वैसे ही आप भी सन्तानरूप अंकुर को प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

लाजा-होम से एक ध्वनि यह भी निकल रही है कि जब अकेले तण्डुल को अग्नि में डाला जाता है, तब वह अग्नि में जलता है और उसकी लाजा बन जाती है, ठीक इसी प्रकार आप भी मुझसे रहित होकर सदा विरहाग्नि में जलते रहेंगे।

लाजा-होम करते हुए चार प्रदक्षिणाएँ की जाती हैं। वस्तुतः मुख्य प्रदक्षिणाएँ चार ही हैं। ये चार प्रदक्षिणाएँ इस

बात की द्योतक हैं कि वर-वधू का गृहस्थाश्रम इतना आदर्श हो कि इसकी कीर्त्ति चारों दिशाओं में व्यापक हो। इन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थों की प्राप्ति हो। ये चारों वेदों के ज्ञाता हों तथा चारों वर्णों और चारों आश्रमों के प्रति इनकी निष्ठा हो।

केश-मोचन

अब पति एकान्त में जाकर पत्नी के केशों का मोचन करता है। इस समय वर—**प्रेतो मुञ्चामि नामुतः**। इस मन्त्र को बोलते हुए यही कहता है कि मैं तुझे पितृकुल से छुड़ा रहा हूँ, परन्तु मैं कोई भी ऐसा कारण उपस्थित न होने दूँगा जिससे तुझे पतिकुल छोड़ना पड़े। **सुबद्धाममुतस्करम्**—मेरा यह सतत् प्रयत्न होगा कि तू पतिकुल में स्नेहरज्जु से अच्छी प्रकार बँधी रह सके।

ब्रह्मचर्यावस्था में शृंगार का अधिकार नहीं होता। केश-मोचन करता हुआ पति आज से उसे शृंगार करने का अधिकार देता है।

यह विधि एक और रहस्य की ओर भी सङ्केत कर रही है। केशों की उपमा रात्रि से दी जाती है। केशों का मोचन करते हुए वर बता रहा है कि रात्रियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक गम्य और दूसरी अगम्य। मैं अगम्य रात्रियों में कभी सहवास नहीं करूँगा।

सप्तपदी

यह विवाह की अन्तिम प्रमुख विधि है। इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गाँठ बाँध दी ज़ाती है।

इस ग्रन्थि-बन्धन का एक प्रयोजन तो यह है कि अकेले पुरुष अथवा अकेली स्त्री के लिए इन सात पगों का रख सकना सम्भव नहीं है। दोनों एक-दूसरे के सहयोगी बनकर ही इस गृहस्थ एवं संसाररूपी भीषण नदी में स्थिरतापूर्वक पैर रख सकेंगे।

ग्रन्थि-बन्धन का दूसरा प्रयोजन क्या है? एक कवि ने कहा है—

जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं यह जानत सब कोय।
मँडए तर की गाँठ में गाँठ-गाँठ रस होय॥

यज्ञमण्डप के नीचे बैठकर बाँधी गई दो वस्त्रों की गाँठ केवल दो वस्त्रों की गाँठ नहीं है, यह तो दो हृदयों का ग्रन्थि-बन्धन है। वैदिक धर्म में तलाक नहीं है। आज वर-वधू दोनों एक हुए, इन दोनों का सम्बन्ध अखण्डित हुआ। यही दर्शाने के लिए यह ग्रन्थि-बन्धन किया जाता है।

इन पगों को रखते हुए वर-वधू को यह भी स्मरण कराता है—**मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम।** हे वधू! तू उल्टे पैर से सीधे पैर का उल्लङ्घन मत करना। गृहस्थ-कार्यों को करते हुए कभी ऐसा मत करना कि सरलता का स्थान कुटिलता ले-ले, सत्य असत्य से और न्याय अन्याय से दब जाए। तू किसी भी स्थिति में सीधे की बजाय कुटिल मार्ग को स्वीकार मत करना। सदा असत्य के स्थान पर सत्य को ही महत्त्व देना। इन शब्दों के साथ वह वधू को दक्षिण=सीधा पैर उठाकर चलने का आदेश देता है। सीधा पैर उठाकर चलने का तात्पर्य भी यही है कि तुझे सीधे=सरल मार्ग से चलना है, वाम=कुटिल, उल्टे और वक्र मार्ग से नहीं।

सप्तपदी का पहला सन्देश है—

ओम् इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु। पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः॥ —पा० १।७।१९

१. इषे—सबसे पूर्व अन्न-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना। गृहस्थ के लिए अन्न सबसे पहली आवश्यकता है। बिना अन्न के गृहस्थाश्रम चल ही नहीं सकता। अन्न के अभाव में न अपना पोषण हो सकेगा, न अतिथियों की सेवा और न अन्य धर्म-कार्य ही सम्भव हो सकेंगे। दरिद्रता पाप की जननी है,

अतः अन्न-प्राप्ति आवश्यक है।

मन्त्र में दूसरी बात कही है—तू मेरी अनुव्रता हो। व्रत का अर्थ है सत्य और धर्मयुक्त नियम एवं सङ्कल्प। पापाचरण का नाम व्रत नहीं है। जो लोग ऐसा कहते हैं कि पति की आज्ञा चाहे कितनी भी पापयुक्त हो उसे मानना ही चाहिए, वे व्रत शब्द का अर्थ ही नहीं जानते।

तीसरी बात है—धर्म-पालन में परम पिता परमात्मा तेरी सहायता करे।

चौथी बात है—हम दोनों मिलकर बहुत पुत्रों=सन्तानों को प्राप्त करें। वैदिक शैली में पुत्र शब्द सन्तान, पुत्र एवं पुत्री दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि बहुत सन्तान से क्या तात्पर्य है? वेद ने दश सन्तान तक उत्पन्न करने की आज्ञा दी है, परन्तु रोगी, निर्बल और दीन-हीन सन्तान नहीं, अपितु सबल, हृष्ट-पुष्ट, दीर्घजीवी और उत्तम गुणों से सुविभूषित श्रेष्ठ सन्तान, अतः उतनी ही सन्तान उत्पन्न करनी चाहिएँ जिनका ठीक रूप से पालन-पोषण किया जा सके, जिन्हें उत्तम रूप से शिक्षित एवं दीक्षित किया जा सके। बच्चों को बिलख-बिलखकर मरने के लिए, वेश्या या खूनी बनने के लिए, कङ्गाल या कायर बनने के लिए पैदा करना भारी असभ्यता है, अत्याचार है और भयङ्कर पाप है।

२. **ऊर्जे**—दूसरे मन्त्र में और सब बातें तो वे ही हैं, किन्तु शारीरिक बल की बात विशेष है। खाद्य-सामग्री बल-पराक्रम और प्राण-शक्ति देनेवाली हो। भोजन स्वाद-प्रधान न होकर पुष्टिकारक होना चाहिए।

३. **रायस्पोषाय**—गृहस्थ के लिए धन की महती आवश्यकता है। धन के अभाव में न यज्ञ हो सकेंगे और न बच्चों का लालन-पालन। **धनाद्धर्मं ततः सुखम्**—धन से ही धर्म का अनुष्ठान होता है और उससे सुख की प्राप्ति होती है, अतः गृहस्थ को सत्य एवं न्यायपूर्ण उपायों से धन-प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए।

४. मायोभव्याय—सुख गृहस्थ का प्राण है, यदि गृहस्थ में सुख नहीं तो वह निष्प्राण है, मुर्दा है, अतः चौथे पग में सुख-प्राप्ति की ओर ध्यान दिलाया गया है। धन-धान्य होने पर भी यदि घर में सुख नहीं तो ऐसा धन व्यर्थ है। धन कमाओ, परन्तु अपने स्वास्थ्य को समाप्त करके नहीं। स्मरण रखो धन आपको रोटी दे सकता है, भूख नहीं। धन आपको बढ़िया-से-बढ़िया पलङ्ग और गद्दे दे सकता है, नींद नहीं। धन वस्त्र दे सकता है, परन्तु शारीरिक सौन्दर्य नहीं, अतः धनोपार्जन करो, परन्तु स्वास्थ्य को समाप्त करके नहीं।

५. प्रजाभ्यः—एक घर में यज्ञों का अनुष्ठान होता है, धन-धान्य प्रचुर मात्रा में है, हर प्रकार का सुख भी है, परन्तु सन्तान नहीं है तो वह घर श्मशान ही है। गृहस्थ का मुख्योद्देश्य सुप्रजा=सुसन्तान का निर्माण करना है। विवाह का उद्देश्य भोग नहीं है, क्योंकि—

A nation which seeks in sexual life nothing but pleasure is bound to disappear.

अर्थात् जो राष्ट्र विवाह की शय्या को केवल भोग-विलास का साधन समझता है, वह जीवित नहीं रह सकता, उसका पतन अवश्यम्भावी है।

यदि भोगों में फँसकर अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ लिया तो उत्तम सन्तान पैदा नहीं हो सकती।

६. ऋतुभ्यः—ऋतुभ्यः शब्द यह सङ्केत कर रहा है कि स्वास्थ्य रक्षा के लिए हम सब कार्य ऋतु=समय पर करें। हमारी प्रत्येक क्रिया ठीक स्थान और ठीक समय पर हो। हमारी दिनचर्या और जीवनचर्या ऋतुओं के अनुकूल हो।

ऋतुभ्यः शब्द मनु के—**ऋतुकालाभिगामी स्यात्।** [३।४५] ऋतुकालगामी बनो। इन शब्दों की ओर भी सङ्केत कर रहा है।

७. सखा—गृहस्थ में हम दोनों मित्रता का व्यवहार करेंगे। **नास्ति भार्यासमो बन्धुः।** संसार में स्त्री के समान और कोई बन्धु नहीं है, अतः दम्पती में मित्रभावना होनी ही

चाहिए।

प्रत्येक गृहस्थ को इनकी प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। इन सात पदार्थों का जो क्रम रखा गया है उससे ऐसा ध्वनित होता है कि पहले की अपेक्षा दूसरा, दूसरे की अपेक्षा तीसरा, इसी प्रकार सातवाँ पग सबसे अधिक पुरुषार्थ की अपेक्षा रखता है।

इन सात बातों के घर में होने से हमारे घर स्वर्ग बन जाएँगे, अतः अपने घरों को वैदिक स्वर्ग बनाने के लिए भी इन सभी बातों पर आचरण करना चाहिए।

जैसे हारमोनियम का मास्टर बनने के लिए सङ्गीत के **'सा, रे, गा, म, प, ध, नि'**—इन सात स्वरों पर अधिकार प्राप्त करना आवश्यक है, उसी प्रकार गृहस्थरूपी हारमोनियम का मास्टर बनने के लिए ऊपर बताई सात बातों के लिए पुरुषार्थ करना भी आवश्यक है।

ये सात पग वैदिक सन्ध्या के प्राणायाम मन्त्र में सङ्केतित— **'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्'** की ओर भी ध्यान दिलाते हैं। इनमें गृहस्थ पाँचवाँ पग है, जिसका उद्देश्य है—'जनः' उत्तम सन्तान उत्पन्न करना। व्यक्ति इसी में फँसकर समाप्त न हो जाए, अतः उसको यहाँ स्मरण कराया गया है कि तुम्हें सात पग रखने हैं।

मस्तक पर जल के छींटे

सप्तपदी की विधि पूर्ण होने पर जो व्यक्ति जल-कुम्भ को लेकर बैठा था, वह वधू एवं वर के समीप आकर उनके मस्तक पर जल के छींटे देता है। इस क्रिया का रहस्य क्या है? वर-वधू को अग्नि के समक्ष बैठे हुए पर्याप्त समय हो गया है। अग्नि की गर्मी से इनका मस्तक भी गर्म हो गया है, अतः जलकणों को छिड़ककर वह व्यक्ति इनके मस्तक को ठण्डक पहुँचाता है। इस क्रिया में गृहस्थ के लिए महत्त्वपूर्ण भाव यह है कि गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होनेवाले इस नव-दम्पती में कभी किसी कारण से कलहाग्नि प्रज्वलित हो उठे तो घर

के वृद्ध एवम् अनुभवी व्यक्ति शीतल जल की भाँति ठण्डे दिमाग़ और मधुर वचनों से उस कलहाग्नि को शान्त करने का प्रयत्न करेंगे, उसे भड़काएँगे नहीं।

सूर्यावलोकन

अब वर-वधू वहाँ से उठकर सूर्य का अवलोकन करते हैं। सूर्यावलोकन करते हुए पति और पत्नी दोनों ही अश्रान्तगति से आगे-ही-आगे जाते हुए सूर्य के समान स्वयं भी जीवन में सदा आगे बढ़ने का सङ्कल्प लेते हैं। '**अदीनाः स्याम शरदः शतम्।** हम सौ वर्ष तक अदीन=अक्षीण इन्द्रिय-शक्तिवाले और प्राण शक्ति से भरपूर होकर अपनी अग्र गति को स्थिर रखते हुए सूर्य के समान चमकेंगे।' ऐसा सङ्कल्प लेते हैं।

सूर्य-दर्शन का तात्पर्य यह भी है कि—

१. सूर्य बहुत ऊँचा है, हमारे जीवन का ध्येय भी बहुत ऊँचा होना चाहिए।
२. सूर्य स्वयं पवित्र है, दूसरों को पवित्र करता है, इसी प्रकार हम स्वयं पवित्र बनेंगे और अपने सम्पर्क में आनेवालों को भी पवित्र बनाएँगे।
३. सूर्य समय पर उदय होता है और समय पर अस्त होता है, इसी प्रकार हमारे कार्य भी नियमित समय पर होंगे इत्यादि।

हृदय-स्पर्श—वैदिक विवाह की रजिस्ट्री

सूर्यावलोकन के पश्चात् वर-वधू दक्षिण हस्त से एक-दूसरे के हृदय का स्पर्श करके निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हैं—

ओम् मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिस्त्वा नियुनक्तु मह्यम्॥ —पार० १।८।८

हे वधू! मैं तेरे अन्तःकरण और आत्मा को अपने हृदय में धारण करता हूँ। तुम्हारा चित्त सदा मेरे चित्त के अनुकूल रहे। मेरी वाणी को तुम एकाग्रचित्त से सेवन किया करो।

प्रजापति परमात्मा तुम्हें मेरे लिए नियुक्त करे।

इसी प्रकार वधू भी कहे—हे प्रिय स्वामिन्! आपके हृदय, आत्मा और अन्तःकरण को मैं अपने हृदय में धारण करती हूँ। आपका चित्त सदा मेरे चित्त के अनुकूल रहे। आप मेरी बात को एकाग्रचित्त से श्रवण किया करें। आज से परमात्मा ने आपको मेरे अधीन किया है।

यह हृदय-स्पर्श-विधि वैदिक विवाह की रजिस्ट्री है। जब कोई व्यक्ति कोई मकान आदि खरीदता है, तब कोर्ट में उसकी रजिस्ट्री होती है। उसका प्रकार यह है कि पहले एक काग़ज़ पर लिखा-पढ़ी होती है, तत्पश्चात् कोर्ट में न्यायाधीश के समक्ष उसपर हस्ताक्षर होते हैं और अंगूठा लगाया जाता है। विवाह-संस्कार में भी यही सब कुछ किया गया है।

यहाँ यज्ञमण्डप ही न्यायालय है। सबसे बड़ा न्यायाधीश परमात्मा है और उसके प्रतिनिधि के रूप में पुरोहित विद्यमान है। जनता—स्त्रियाँ और पुरुष गवाह के रूप में उपस्थित हैं। वर और वधू का हृदय-पटल ही वह काग़ज़ है जिसपर विवाह-सम्बन्धी सभी बातें अङ्कित की गई हैं और अँगूठे के स्थान पर यहाँ पूरी हथेली की छाप लगाई गई है।

आशीर्वाद

हृदय-स्पर्श के पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ रख, सभी उपस्थित जनों से प्रार्थना करता है—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं वि परेतन॥

—ऋ० १०।८५।३३

हे उपस्थित जनो! यह वधू अत्यन्त मङ्गलकारिणी है। आप सब मिलकर इसे कृपा-दृष्टि से देखो तथा इसे सौभाग्यसूचक आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर को जाओ, परन्तु विशेष रूप से पराङ्मुख होकर न जाओ, अपितु पुत्रादि के मङ्गल की आशा से फिर भी आते रहो।

वर की प्रार्थना पर सब उपस्थित जन। "**ओम् सौभाग्यमस्तु। ओं शुभं भवतु।**" इन वाक्यों से आशीर्वाद

देते हैं।

तत्पश्चात् स्विष्टकृत् और व्याहृति आहुतियों के साथ पूर्व-विधि समाप्त होती है।

उत्तर-विधि

पूर्व-विधि समाप्त होने पर कुछ देर विश्राम और सन्ध्योपासना आदि दैनिक कृत्यों को पूर्ण कर सूर्यास्त के पश्चात् नक्षत्रोदय होने पर उत्तर-विधि का आरम्भ करना चाहिए। सामान्य यज्ञ करने के पश्चात् उत्तर-विधि के मुख्य अङ्ग आरम्भ होते हैं।

प्रधान होम

उत्तर-विधि का प्रधान होम छह विशिष्ट मन्त्रों से किया जाता है। इन छह मन्त्रों में वर कहता है—हे कन्ये! तेरे शरीर की सन्धियों में, नेत्रों में, लोमों में, नाभि-रन्ध्रादि में, केशों में, देखने में, हाथ-पैरों में, जाङ्घों और घुटनों में तथा शील में जो रोग के कृमि और अशुभ लक्षण हैं, मैं घृत की आहुतियों से उन व्याधियों को समाप्त और अशुभ लक्षणों को शान्त करता हूँ।

विवाह से पूर्व वरपक्ष कन्या को देखता है और कन्यापक्ष वर को देखता है। कुल, शील, रङ्ग, रूप, शारीरिक स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य सभी बातों की पूर्ण जाँच-पड़ताल करके ही विवाह किया जाता है। विवाह से पूर्व यह सब-कुछ आवश्यक भी है, परन्तु विवाह होने के पश्चात् 'मुझे तुम्हारा हँसना अच्छा नहीं लगता, मुझे तुम्हारा बोलना अच्छा नहीं लगता, मुझे तुम्हारा चलना अच्छा नहीं लगता।' इस प्रकार की बातें नहीं होनी चाहिएँ। अब तो पत्नी के लिए अपने पति से बढ़कर कोई सद्गुणी, सदाचारी, सुन्दर और विद्वान् संसार-भर में नहीं है। इस प्रकार पति के लिए भी अपनी पत्नी से उत्कृष्ट और कोई नारी संसार में नहीं है। यदि दोनों के जीवन में कोई रोग, दोष अथवा त्रुटि है तो उसे अग्निहोत्र की आहुतियों से शान्त कर देना चाहिए।

अग्निहोत्र से रोगों का शमन होता है और शरीर पुष्ट होता है। इसलिए वेद ने कहा है—**यद्वाहिष्ठं तदग्नये।** [ऋ०

५।२५।७] जो वस्तु अधिक उत्तम है उसे अग्नि में अर्पित करना चाहिए। अग्नि में डाला पदार्थ नष्ट नहीं होता, अपितु सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर वायु को पौष्टिक बनाता है। स्वास्थ्य-जनक होने के कारण प्रतिदिन अग्निहोत्र करना ही चाहिए।

ध्रुव-दर्शन

इस प्रधान होम के पश्चात् वर वधू को सभा-मण्डप से बाहर ले-जाकर ध्रुव का दर्शन कराता है। उस समय वधू कहती है—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम्।

—गोभि० २।३।९

हे ध्रुव नक्षत्र! जैसे तू ध्रुव है ऐसे ही प्रभु-कृपा से मैं भी पतिकुल में ध्रुव होकर रहूँ।

ध्रुव-दर्शन कराकर वधू को ध्रुव तारे की भाँति स्थिर रहने का उपदेश दिया गया है। अन्य तारे रातभर पूर्व से पश्चिम की ओर जाते दिखाई देते हैं, परन्तु ध्रुव अपने ही स्थान पर उत्तर में ठहरा रहता है। तलाक देनेवाली, इधर-उधर दौड़नेवाली चञ्चल स्त्रियों को इस ध्रुव से शिक्षा लेनी चाहिए कि वे अपने-अपने विवाहित पति में ही अविचल भक्ति रक्खें। जैसे जहाज चलानेवाले ध्रुव की सहायता से अपने मार्ग से भ्रष्ट नहीं होते, वैसे ही स्त्री भी पतिव्रत में दृढ़ बने। दोनों ध्रुव की भाँति परस्पर प्रियाचरण में ध्रुव बनें।

ध्रुव एक स्थान पर पच्चीस सहस्र वर्ष तक अटल एवम् अचल रहता है, उसके पश्चात् स्थान बदल लेता है। इससे यह उपदेश मिलता है कि गृहस्थ भी २५ वर्ष तक गृहस्थ धर्म में अटल रहें, उसके पश्चात् अपना स्थान बदलकर वानप्रस्थ अथवा संन्यास में प्रवेश करें।

ध्रुव-दर्शन का प्रयोजन यह भी है कि क्षणभंगुर और परिवर्त्तनशील संसार में नाश हो जानेवाली भौतिक वस्तुओं में आत्मतत्त्व ध्रुव है। जिसने अध्रुव वस्तुओं के द्वारा उस ध्रुव वस्तु को प्राप्त नहीं किया उसने जन्म लेकर और सामाजिक

संस्कारों के प्रपञ्च में पड़कर भी क्या किया?

अरुन्धती-दर्शन

ध्रुव-दर्शन के पश्चात् वर वधू को अरुन्धती नक्षत्र का दर्शन कराता है। यह अरुन्धती नक्षत्र आकाश में वसिष्ठ नक्षत्र के वामपार्श्व में थोड़ा-सा पीछे हटकर है, मानो उसका आदर करने के लिए उसके आगे न होकर पीछे स्थित हो। अरुन्धती का अवलोकन करते हुए पत्नी कहती है—**अरुन्धत्यसि रुद्धाऽहमस्मि।** अरुन्धती तारिके! जैसे तू सप्तऋषि मण्डल के निकट सदा रुकी रहती है, वैसे मैं भी अपने पति के नियमों में रुद्ध हो गई हूँ, बँध गई हूँ।

अरुन्धती के शब्दार्थ में ही स्त्री के लिए उपदेश का सागर भरा पड़ा है। इसमें उसका जीवन-विधान (Code) है। अरुन्धती का अर्थ है विरोध न करनेवाली (unresisting), अरुन्धती वह है जो मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी प्रकार से अपने पति की इच्छा और आकांक्षाओं को, ज्ञान और क्रियाओं को रूँधे नहीं।

अरुन्धती-दर्शन स्त्रियों को हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ सन्तान उत्पन्न करने का सन्देश देता है। इस विषय में एक शिक्षाप्रद आख्यायिका है—

एक समय सप्तर्षि एवम् अरुन्धती तपस्या करते हुए पृथिवी पर विचर रहे थे। विचरण करते हुए वे एक सरोवर पर पहुँचे। वह स्थान बड़ा रमणीक था और सरोवर कमल के डण्ठलों से परिपूर्ण था। ये सभी कमल-डण्ठल तोड़कर स्नान करने के लिए सरोवर में उतरे। स्नान करके जब वे बाहर आये, तब उन्होंने देखा कि उनके मृणाल वहाँ नहीं हैं। उन्होंने किसी व्यक्ति को उन मृणालों को ले-जाते हुए नहीं देखा था, अतः उन्हें सन्देह हुआ कि वे मृणाल आपस में ही किसी ने छिपा दिये हैं। सन्देह-निवारण के लिए उन्होंने शपथ खाने का निश्चय किया। उस समय सभी ऋषियों ने यह शपथ खाई कि ''यदि हमने मृणालों की चोरी की हो तो हमें वह पाप लगे जो पाप प्रतिदिन सन्ध्या न करनेवाले को लगता

है"। अरुन्धती ने शपथ खाई कि—"जो पाप माता को अनाचार करने और निर्बल सन्तान उत्पन्न करने से लगता है, वही पाप उसे लगे जिसने मृणालों की चोरी की हो"। इस आख्यायिका से यह स्पष्ट है कि निर्बल सन्तान उत्पन्न करना पाप है, अतः अरुन्धती का दर्शन करते हुए प्रत्येक नारी को वीर सन्तान उत्पन्न करने का व्रत लेना चाहिए।

सहभोज

अरुन्धती-दर्शन के पश्चात् अग्नि में आहुति देकर पति-पत्नी ओदन=भात का भक्षण करते हैं। ओदन-भक्षण से पूर्व जिन मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, उनमें कहा है—"हम सत्य की गाँठ से अपने को बाँधेंगे, सदा प्रेम का व्यवहार करेंगे और एक-दूसरे के शरीर की रक्षा करेंगे।" यह भावना केवल नव-दम्पती तक ही नहीं, अपितु, सारे समाज और देश के प्रति आनी चाहिए, इस बात का भी मन्त्रों में सङ्केत है।

ओदन-प्राशन कर चुकने पर महावामदेव्य गान के साथ विवाह-विधि सम्पूर्ण होती है। वामदेव्यगान के पश्चात् वर-वधू को अपने आसन से खड़े होकर यथाक्रम वृद्धजनों और पिता आदि गुरुओं को अभिवादन करना चाहिए।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि विवाह-संस्कार के मन्त्रों का अर्थ एवं विधियों का रहस्य बड़ा वैज्ञानिक है। श्रीमती एनी बेसण्ट ने वैदिक विवाह-संस्कार के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है—

Nowhere in the whole world, nowhere in any religion, a nobler, a beautiful, a more perfect ideal of marriage than you can find in the early writings of the Hindus. —Annie Besant

अर्थात् भूमण्डल के किसी भी देश में, संसार की किसी भी जाति में, किसी धर्म में विवाह का महत्त्व ऐसा गम्भीर एवं ऐसा पवित्र नहीं जैसाकि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में पाया जाता है।

—o—

वैदिक विवाह-पद्धति

अथ विवाह-संस्कारविधिः

जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जाए, तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो, उस रात्रि से तीन दिन पूर्व विवाह करने के लिए प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिए और यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य आदि सब सामग्री शुद्ध करके रखनी उचित है। पश्चात् एक[1] घण्टेमात्र रात्रि जाने पर—

वर-वधू स्नान

ओं काम वेद ते नाम मदो नामासि समान-यामुꣳसुरा ते अभवत्। परमत्र जन्माग्रे तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा[2] ॥ १ ॥

ओम् इमं त उपस्थं मधुना सꣳसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम्। तेन पुꣳसोभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञि स्वाहा[3] ॥ २ ॥

---

१. यदि आधी रात तक विधि पूरी न हो सके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवे कि जिससे मध्य रात्रि तक विवाह-विधि पूरी हो जावे॥ —द०स०

२. हे काम! तू संसार में प्रसिद्ध हो रहा है। तेरी मस्ती को सारा जगत् जानता है। तू संसार को उत्पन्न करने का शुद्ध बीजरूप है। स्त्री-पुरुष को तप से युक्त गृहस्थाश्रमरूपी उच्च धर्म का पालन कराने के लिए परमात्मा ने तुझे उत्पन्न किया है, परन्तु तू संसार को उन्मत्त बना रहा है, अतः तेरे इस भयङ्कर प्रभाव का दमन करने और तुझे सीमित रखने के लिए यह जल है।

३. मैं तेरे आनन्द देनेवाले साधन को प्रेम द्वारा परोपकार की भावना में प्रवृत्त करता/करती हूँ। यह परोपकार की प्रवृत्ति गृहस्थाश्रम में रहकर सन्तान उत्पन्न करने का दूसरा मार्ग है। हे काम! तू किसी के वश में आनेवाला नहीं है, परन्तु मैं इस गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए तुझे वश में करके घर का स्वामी/स्वामिनी बनता/बनती हूँ। स्वार्थ त्यागकर गृहस्थाश्रम की रक्षा तथा पालन-पोषण रूपी कर्त्तव्य में लगकर परोपकारी/परोपकारिणी बनता/बनती हूँ।

ओम् अग्निं क्रव्यादमकृन्वन्गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः। तेनाज्यकृण्वꣳस्त्रै शुङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा[१] ॥ ३ ॥

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को लेके वधू और वर स्नान करें, पश्चात् वधू उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करे।

वैसे ही वर भी अपने घर के एकान्त में जाके उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके यज्ञशाला में आ उत्तमासन पर पूर्वाभिमुख बैठके ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना कर वधू के घर को जाने का ढङ्ग करे। तत्पश्चात् कन्या और वरपक्ष के पुरुष बड़े सम्मान से वर को घर ले-जाएँ। जिस समय वर वधू के घर में प्रवेश करे, उसी समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार से आदर-सत्कार करें।

उसकी रीति यह है कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रहके—

१. स्वागत

साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ॥[२]

—पार० १।३।४

इस वाक्य को बोलें। उसपर वर—

ओम् अर्चय ॥[३]

---

१. मैं अग्निरूपी तेज/घृतरूपी पौष्टिक हूँ। जैसे उचित रीति और समय पर किया गया हवन घृत और अग्नि के संयोग से वायु तथा जल को शुद्ध कर देता है, वैसे ही मैं पुरुष अपने वीर्यरूपी घृत को अपनी (स्त्री की) रजरूपी अग्नि में उचित अवस्था, व्यवस्था और समय पर संयुक्त करूँगा/करूँगी, और उससे उत्तम, वीर्यवान्, पराक्रमी आदि उत्तम गुणों से युक्त सन्तान उत्पन्न करके मनुष्य-समाज को उन्नत तथा आनन्दित करने का साधन बनूँगा/बनूँगी।

२. आइए, सुखपूर्वक विराजिए, हम आपका स्वागत करते हैं।

३. बहुत अच्छा।

ऐसा प्रत्युत्तर देवे।

तब वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिए जो उत्तम आसन सिद्ध कर रक्खा हो, उसे हाथ में लेकर—

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः[१] प्रतिगृह्यताम्॥

यह उत्तम आसन है, आप ग्रहण कीजिए। और वर—

ओम् प्रतिगृह्णामि॥[२]

इस वाक्य को बोलके वधू के हाथ से आसन ले, बिछा, उसपर सभामण्डप में पूर्वाभिमुख बैठके, वर—

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः।
इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति॥[३]

—पार० १।३।८

इस मन्त्र को बोले।

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भरके कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम्॥[४]

इस वाक्य को बोलके वर के आगे धरे। पुनः वर—

ओम् प्रतिगृह्णामि॥[५]

इस वाक्य को बोलके कन्या के हाथ से उदक ले पग-प्रक्षालन[६] करे और उस समय वर—

---

१. तीन बार पाठ आदरार्थ है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिए। —द०स०

२. बहुत अच्छा, लाइए।

३. जैसे प्रकाशमान नक्षत्रादिकों में सूर्य श्रेष्ठ है वैसे ही ज्ञान, बल, सदाचार तथा अन्य गुणों से सजातीय तुल्य पुरुषों में मैं श्रेष्ठ हूँ, और जो कोई मुझे नीचा दिखाना चाहता है उसे इस आसन के समान ही पादाक्रान्त करूँगा।

४. पैर धोने के लिए जल स्वीकार कीजिए।

५. लाइए।

६. यदि घर का प्रवेशद्वार पूर्वाभिमुख हो तो वर उत्तराभिमुख और वधू तथा कार्यकर्त्ता पूर्वाभिमुख खड़े रहके, यदि ब्राह्मण वर्ण हो तो प्रथम दक्षिण पग पश्चात् बायाँ, और अन्य क्षत्रिय आदि वर्ण हों तो प्रथम बाँया पग धोवे पश्चात् दाहिना। —द०स०

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ॥[१]

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता दूसरा शुद्ध लोटा शुद्ध-पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे। पुनः कन्या—

ओम् अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ॥[२]

इस वाक्य को बोलके वर के हाथ में देवे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥[३]

इस वाक्य को बालके कन्या के हाथ से जलपात्र लेके उससे मुखप्रक्षालन करे और उसी समय मुख धोके वर—

ओम् आप स्थ युष्माभिः सर्वान् कामानवाप्नवानि। ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत। अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥[४]

इन मन्त्रों को बोले। फिर कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर, उसमें आचमनी रख, कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या—

ओम् आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रति-गृह्यताम् ॥[५]

इस वाक्य को बोलके वर के सामने करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥[६]

---

१. हे जल! तू अन्न का सारभूत रस है। रोगादि-निवृत्ति के लिए मैं तेरा सेवन करूँ। तू सदैव मेरी और मेरे पाँवों की रक्षा करना।

२. यह मुख धोने के लिए जल है, स्वीकार कीजिए।

३. अच्छा, लाइए।

४. मैं इस जल से शरीर के विकारों को दूर कर सब कामनाओं को सिद्ध करता हूँ। हे जल! मैं तुझे तुम्हारे आश्रय-स्थान समुद्र में पहुँचाता हूँ, परन्तु तुम्हारी शक्ति जो वीर्यरूप से शरीर में विद्यमान है मुझसे दूर न हो। तुम्हें साधन बनाकर हमारी सन्तति दुःख-दारिद्र्य से रहित हो।

५. यह आचमन के लिए जल है, स्वीकार कीजिए।

६. धन्यवाद, लाइए।

इस वाक्य को बोलके कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले, सामने धर, उसमें से जितना जल अंगुलियों के मूल तक पहुँचे उतना दाहिने हाथ में लेके वर निम्न मन्त्र को तीन बार बोलकर तीन आचमन करे—

ओम् आमागन् यशसा सꣳसृज वर्चसा। तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम्॥[1]

मधुपर्क से सत्कार

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मुधपर्क[2] का पात्र कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्॥[3]

ऐसी विनती वर से करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि॥[4]

इस वाक्य को बोलके कन्या के हाथ से ले और उस समय—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे॥[5]

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोलके मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे और—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि॥[6] —यजुः १।१०

---

१. हे जलो! तुम मुझे चारों ओर से प्राप्त हुए हो। मुझे अपने यश, कान्ति और तेज से युक्त करो। मुझे प्रजाओं का प्यारा बनाओ, पशुओं का स्वामी बनाओ और शरीर से नीरोग बनाओ।

२. मधुपर्क उसको कहते हैं जो दही में घी वा सहत (शहद) मिलाया जाता है। उसका परिमाण १२ तोले दही में ४ तोले सहत और चार तोले घी मिलाना चाहिए और यह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है। —द०स०

३. यह मधुपर्क है, ग्रहण कीजिए।

४. बहुत अच्छा, लाइए।

५. मैं तुझे मित्र की दृष्टि से देखता हूँ।

६. परमात्म देव की सृष्टि में मैं तुझे ग्रहण करता हूँ। प्राण और अपान के बल-वीर्य के लिए मैं तुझे बलिष्ठ बाहुओं से ग्रहण करता हूँ।

इस मन्त्र को बोलके मधुपर्क-पात्र को वाम हाथ में लेवे और—

ओं भूर्भुवः स्वः। मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ १ ॥[1]

ओं भूर्भुवः स्वः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ २ ॥[2]

ओं भूर्भुवः स्वः। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ ३ ॥[3]

—यजुः १३।२७-२९

इन तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे।

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि॥[4]

इस मन्त्र को पढ़, दाहिने हाथ की अनामिका और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार बिलोवे और उस मधुपर्क में से वर—

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण च्छन्दसा भक्षयन्तु॥[5]

इस मन्त्र से पूर्व दिशा

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु॥[6]

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा

ओम् आदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा भक्षयन्तु॥[7]

इससे पश्चिम दिशा, और—

---

१. हे प्रभो! वायु सरस और नीरोग होकर बहें, नदियाँ मधुर होकर बहें तथा ओषधियाँ हमारे लिए माधुर्ययुक्त हों।

२. हे प्रभो! रात्रियाँ हमारे लिए मधुमयी हों, उषाएँ भी मधुमयी हों, यह पार्थिव लोक मधुर हो। पिता के समान पालनकर्त्ता द्युलोक भी मधुमय हो।

३. हे प्रभो! वनस्पति-जगत् और सूर्य हमारे लिए मधुर हों। गौएँ हमारे लिए सुखकारिणी हों।

४. हे जठराग्ने! यह तेरे लिए अन्न है। इसमें जो न खाने योग्य कण आदि हैं, उन्हें मैं बाहर निकालता हूँ।

५. वसु ब्रह्मचारी इस मधुपर्क के अधिकारी हैं।

६. रुद्र ब्रह्मचारी इसे खाने के अधिकारी हैं।

७. आदित्य ब्रह्मचारी इसे ग्रहण करने के अधिकारी हैं।

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु ॥[१]

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा-थोड़ा छोड़े, अर्थात् छींटे देवे।

ओं भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ॥[२]

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोलके पात्र के मध्य भाग में से लेके ऊपर की ओर तीन बार फेंकना। फिर उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन काँसे के पात्रों में धर, भूमि में अपने सम्मुख रक्खे। रखके—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥[३]

इस मन्त्र को एक-एक बार बोलके एक-एक भाग में से वर थोड़ा-थोड़ा प्राशन करे। जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो, वह किसी अपने सेवक को देवे वा जल में डाल देवे। तत्पश्चात्—

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥[४]

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥[५]

इन दो मन्त्रों से दो आचमन, अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा वर करे। तत्पश्चात् वर—

ओं वाङ्म आस्येऽस्तु ॥ इस मन्त्र से मुख,

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इससे नासिका के दोनों छिद्र,

ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आँखें,

---

१. सब विद्वान् इसके खाने के अधिकारी हैं।

२. सब प्राणियों की भलाई के लिए मैं इस मधुपर्क को ग्रहण करता हूँ।

३. जो पुष्पों के माधुर्य से युक्त, पवित्र और अन्न के समान खाने योग्य है, मैं ऐसे उत्तम मधु और पवित्र अन्नमात्र का भोक्ता होऊँ।

४. हे प्रभो! आप प्राणियों के आश्रयभूत हैं।

५. प्रभो! आपकी कृपा से मुझमें सत्य, यश और श्री विराजमान हों।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान,
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु,
ओम् ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जङ्घा और
ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना। पश्चात् कन्या—

२. गोदान

ओं गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम् ॥[1]

इस वाक्य से वर की विनती करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य, जोकि वर के योग्य हों, अर्पण करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥[2]

इस वाक्य से उसको ग्रहण करे। इस प्रकार मधुपर्क विधि यथावत् करके, वधू और कार्यकर्त्ता वर को सभामण्डपस्थान[3] से घर में ले-जाके शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठाके, वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बैठावे और कार्यकर्त्ता उत्तराभिमुख बैठके—

३. कन्यादान

ओम् अमुक[4] गोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीम्[5] अलंकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ॥

इस प्रकार बोलके वर का हाथ चत्ता, अर्थात् हथेली ऊपर रखके, उसके हाथ में वधू का दक्षिण हाथ चत्ता ही रखना. और वर—

---

१. यह सुन्दर गौ है, ग्रहण कीजिए।
२. मैं स्वीकार करता हूँ।
३. यदि सभामण्डप-स्थान न किया हो तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो उससे दूसरे घर में वर को ले-जाए। —द०स०
४. 'अमुक' पद के स्थान में जिस गोत्र और कुल में वधू उत्पन्न हुई हो उसका उच्चारण अर्थात् उसका नाम लेना। —द०स०
५. "अमुकनाम्नीम्" के स्थान पर वधू का नाम द्वितीया विभक्ति के एकवचन से बोलना। —द०स०

ओम् प्रतिगृह्णामि ॥[१]

ऐसा बोलके—

वधू का वस्त्रों से सत्कार

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा। शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥[२]

इस मन्त्र को बोलके वधू को उत्तम वस्त्र देवे। तत्पश्चात्—

ओं या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥[३]

इस मन्त्र को बोलके वधू को वर उपवस्त्र देवे। इन वस्त्रों को वधू लेके दूसरे घर में एकान्त में जा उन्हीं वस्त्रों को धारण करे, और वह उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे।

वर का वस्त्र-धारण

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥[४]

---

१. मैं स्वीकार करता हूँ।

२. तू मेरे साथ वृद्धावस्था तक जीवित रह और मेरे दिये हुए इस वस्त्र को पहन! मनुष्यों में प्रमाद से अपनी रक्षा करनेवाली हो और सौ वर्ष-पर्यन्त प्राण धारण कर। तेजस्विनी होकर धन और पुत्रों का संग्रह कर। हे सुन्दर आयुवाली! इस वस्त्र को पहन।

३. जिन देवियों ने इस वस्त्र के सूत्र को काता है और जिन देवियों ने बुना है और जिन्होंने सूत को फैलाया है और जिन देवियों ने इसे सीया है, वे देवियाँ तुझे वृद्धावस्था-पर्यन्त शिक्षा देती रहें। हे आयुष्मति! इस वस्त्र को तू धारण कर।

४. मैं इन वस्त्रों को अपने शरीर को आच्छादित करने के लिए, यश-प्राप्ति के लिए तथा दीर्घ जीवन के लिए धारण करता हूँ। मैं धन-धान्य और पुत्रादि से युक्त होकर वृद्धावस्था-पर्यन्त जीना चाहता हूँ। प्रभु कृपा करे कि मैं सौ वर्ष तक जीवित रहूँ।

इस मन्त्र को पढ़के वर स्वयं अधोवस्त्र धारण करे और—

**ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती।
यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम्॥**[१]

इस मन्त्र को पढ़के दुपट्टा धारण करे।

बड़े यज्ञ की तैयारी

कलश-स्थापन तथा दृढ़ पुरुष की नियुक्ति

इस प्रकार वधू वस्त्र-परिधान करके जबतक सँभले, तबतक कार्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञमण्डप में जा, यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़कर रक्खे, और वरपक्ष का एक पुरुष शुद्ध वस्त्र धारण कर, कुण्ड के दक्षिणभाग में उत्तराभिमुख हो कलशस्थापन कर, जबतक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो जाए, तबतक बैठा रहे।

उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड लेके कुण्ड के दक्षिणभाग में कार्य समाप्ति-पर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे और इसी प्रकार वधू का सहोदर भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई, मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो, वह चावल वा ज्वार की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिलाकर शमीपत्रयुक्त धाणी की चार अञ्जलि एक शुद्ध सूप में रखके धाणीसहित सूप लेके यज्ञकुण्ड के पश्चिमभाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सपाट शिला, जोकि सुन्दर, चिकनी हो उसको तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिए दो कुशासन वा यज्ञिय तृणासन अथवा यज्ञिय वृक्ष की छाल के आसन जोकि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों, उन आसनों को रखवावे। तत्पश्चात् वस्त्र धारण की हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वर के सम्मुख लावे और उस समय वर और कन्या—

---

१. द्युलोक और पृथिवीलोक मुझे यश प्रदान करें, धनी और बुद्धिमान् मुझे यशस्वी बनाएँ। प्रभु मुझे यश प्रदान करें तथा मैं अपने प्रयत्न से यश प्राप्त करूँ।

कन्यादान

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥[१]

—ऋ० १०।८५।४७

इस मन्त्र को बोलें। तत्पश्चात् वर अपने दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़के—

ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा।
हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु 'असौ'[२] ॥[३]

इस मन्त्र को बोलके, उसको लेके घर के बाहर मण्डपस्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए वधू तथा वर दोनों आएँ और वर—

ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥[४]—ऋ० १०।८५।४४

---

१. इस यज्ञशाला में उपस्थित महानुभावो! आपको साक्षी कर हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दोनों अपनी प्रसन्नता से इस गृहस्थाश्रम में एक-साथ रहने के लिए एक-दूसरे को स्वीकार कर रहे हैं। हम दोनों के हृदय जल के समान शान्त और मिले हुए रहेंगे। जैसे प्राणवायु प्रिय होता है, वैसे हम दोनों एक-दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे। जैसे परमात्मा सब जगत् को धारण करता है, वैसे ही हम दोनों एक-दूसरे को धारण करेंगे। जैसे उपदेशक श्रोताओं से प्रेम करता है, वैसे ही हम दोनों का आत्मा दृढ़ प्रेमयुक्त हो।

२. 'असौ' पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करना। —द०स०

३. हे वरानने! जैसे पवित्र वायु तथा तेजोमय जलादि को किरणों से ग्रहण करनेवाला सूर्य दूरस्थ पदार्थों व दिशाओं को प्राप्त होता है, वैसे तू प्रेमपूर्वक अपनी इच्छा से मुझको प्राप्त होती है। परमात्मा तुझे मेरे मन के अनुकूल करे।

४. हे वरानने! प्रभु-कृपा से तू मझसे विरोध न करनेवाली और मुझे क्रूर दृष्टि से देखनेवाली न हो, अपितु प्रसन्नचित्त, शुभ गुणों से सुप्रकाशित और पशुओं को सुखदा हो। वीर सन्तान उत्पन्न करनेवाली, देवरों से प्रेम करनेवाली तथा हमारे मनुष्यों और पशुओं के लिए भी कल्याण करनेवाली हो।

ओं भूर्भुवः स्वः। सा नः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै॥[१]

यज्ञ की महिमार्थ एक परिक्रमा

इन मन्त्रों को बोलके वर-वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके, कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण-भाग में वधू और वधू के वाम-भाग में वर बैठके, वधू—

ओं प्र मे पतियानः पन्था कल्पताꣳ शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्॥[२]

इस मन्त्र को बोले। फिर यथाविधि यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिणभाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना करनी—

पुरोहित-नियुक्ति

यजमानोक्तिः—ओमावसोः सदने सीद।

यजमान पुरोहित से प्रार्थना करे—"आप यज्ञ के स्थान में बैठिए।"

ऋत्विगुक्तिः—ओं सीदामि।

पुरोहित बोले—"बहुत अच्छा।"

यजमानोक्तिः—ओम् तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुक संवत्सरे.......... अयने.....ऋतौ.....मासे.....पक्षे.....तिथौ.....दिवसे..... नक्षत्रे.....लग्ने.....मुहूर्ते.....जम्बूद्वीपे.....भरतखण्डे

---

१. हे देवी! परमपिता परमात्मा तुझे मेरे लिए कल्याणकारिणी बनाये, जिससे हम दोनों श्रेष्ठ सन्तान बनाने में सफल हों और गृहस्थ-जीवन को सुखपूर्वक बिताएँ।

२. प्रभो! कृपा करो, मेरे पति का जैसा मार्ग है वैसा ही मेरा मार्ग भी बने, जिससे मैं सुख प्राप्त करती हुई निर्विघ्नतापूर्वक पतिलोक=गृहस्थाश्रम को प्राप्त होऊँ।

आर्यावर्त्तैकदेशान्तर्गते.....प्रान्ते.....जनपदे.....नगरे..... स्थाने अहं स्वपुत्रस्य/पुत्र्या विवाहसंस्कार-कर्मकरणाय भवन्तं वृणे।

मैं अमुक तिथि आदि में विवाह-संस्कार कराने के लिए आपका वरण करता हूँ।

ऋत्विगुक्तिः—वृतोऽस्मि।

मैं स्वीकार करता हूँ। तत्पश्चात्—

४. यज्ञ

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा॥ १ ॥ इससे एक,
ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा॥ २ ॥ इससे दूसरा,
ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से तीन आचमन वर, वधू, पुरोहित और कार्यकर्त्ता करके तत्पश्चात् वामहस्त में जल लेकर नीचे लिखे मन्त्रों से अङ्गों का स्पर्श करें।

अङ्गस्पर्शमन्त्राः

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु। इस मन्त्र से मुख।
ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु। इससे नासिका के दोनों छिद्र।
ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। इस मन्त्र से दोनों आँखें।
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। इस मन्त्र से दोनों कान।
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु। इस मन्त्र से दोनों बाहु।
ओम् ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु। इस मन्त्र से दोनों जङ्घा।
ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु।
—इस मन्त्र से शरीर के सब अङ्गों पर जल छिड़कना।

यज्ञोपवीत

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं

बलमस्तु तेजः ॥

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

इन मन्त्रों को बोलकर यज्ञोवपीत धारण कराएँ, तत्पश्चात्—

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः

ओ३म्। विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद् भ॒द्रन्तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥ —यजुः० ३०।३

अर्थ—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा सुव) दूर कर दीजिए, (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है, (तत्) वह सब हमको (आ सुव) प्राप्त कीजिए ॥ १ ॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ आसीत्। स दा॑धार पृ॒थि॒वीन्द्यामु॒तेमाङ्कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ २ ॥ —यजुः० १३।४

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य-चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्त्तमान था, (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत्) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ३॥ —यजुः० २५।१३

अर्थ—(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता, (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा, (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष, सत्यस्वरूप शासन और न्याय, अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिसका आश्रय ही मोक्षसुखदायक है, जिसका न मानना, अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप, (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति, अर्थात् उसी की आज्ञा-पालन करने में तत्पर रहें॥ ३॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव। य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४॥ —यजुः० २३।३

अर्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राणवाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एकः इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है, (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा-पालन में समर्पित करके (विधेम) विशेष भक्ति करें॥ ४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ५॥ —यजुः० ३२।६

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाववाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण, (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक-लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥६॥ —ऋ० १०।१२१।१०

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मन्! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न, दूसरा कोई (ता) उन, (एतानि) इन—(विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़-चेतनादिकों को (न) नहीं (परि बभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें, (तत्) उस-उसकी कामना (नः) हमारी (अस्तु) सिद्ध होवे, जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥७॥ —यजुः० ३२।१०

अर्थ—हे मनुष्यो! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों का (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक, (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक, (सः) वह (विधाता) सब कामों

का पूर्ण करनेहारा, (विश्वा) सम्पूर्ण लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख-दुःख से रहित, नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप धारण करनेहारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है, अपने लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें॥ ७॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम॥ ८॥

—यजुः० ४०।१६

अर्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करनेहारे, (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुपथा) अच्छे, धर्मयुक्त, आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइए और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिए। इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नमः उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें॥ ८॥

अग्न्याधानमन्त्रः

ओं भूर्भुवः स्वः॥

—गोभिलगृ० प्र० १। खं० १। सू० ११

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला, अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धर, उसमें छोटी-छोटी समिधा लगाके यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों में उठा,

यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़कर अगले मन्त्र से आधान करे। वह मन्त्र यह है—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥

—यजुः० ३।५

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर, उसपर छोटे-छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर, अगला मन्त्र पढ़के व्यजन=पंखे से अग्नि को प्रदीप्त करे।

अग्नि प्रदीप्त करने का मन्त्र

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥ —यजुः० १५।५४

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा पलाश आदि की आठ-आठ अंगुल की तीन समिधाएँ घृत में डुबा, उनमें से एक-एक निकाल निम्नलिखत मन्त्रों से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ाएँ। वे मन्त्र ये हैं—

समिदाधान के मन्त्र

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ १॥

इससे पहली समिधा चढ़ाएँ।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ २॥

इससे और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ ३॥

इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा चढ़ाएँ।

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम॥ ४॥ —यजुः० ३।१-३

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके नीचे लिखे मन्त्र से पाँच घृत की आहुति देनी।

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम।

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेके वेदी के पूर्व आदि दिशा और चारों ओर छिड़काएँ। इसके ये मन्त्र हैं—

जल-प्रसेचन के मन्त्र

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व॥ इस मन्त्र से पूर्व

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व॥ इससे पश्चिम

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व॥ इससे उत्तर, और—

—गोभिलगृ० प्र० १। खं० ३। सू० १-३

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ —यजुः० ३०।१

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़काएँ। इसके

पश्चात् यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिणभाग में जो दूसरी आहुति देनी होती है, उनको 'आघारावाज्याहुति' कहते हैं, और जो कुण्ड के मध्य में दो आहुतियाँ दी जाती हैं उनको 'आज्यभागाहुति' कहते हैं, अतः घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा, मध्यमा और अनामिका से स्रुवा को पकड़के—

आघारावाज्यभागाहुतिमन्त्राः

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तरभाग अग्नि में,

ओम् सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदन्न मम ॥

—गो० गृ० प्र० १। खं० ७। सू० २४

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधाओं पर आहुति देनी। तत्पश्चात्—

ओम् प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ।

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी। उसके पश्चात् उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भरके प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें।

व्याहृत्याहुतिमन्त्राः

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम ॥

अष्टाज्याहुतिमन्त्राः

ओं त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो

विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्नी-वरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ १॥ —ऋ० ४।१।४

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणा-भ्याम्—इदन्न मम॥ २॥ —ऋ० ४।१।५

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम॥ ३॥ —ऋ० १।२५।१९

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम॥ ४॥ —ऋ० १।२४।११

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञिया पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णु-र्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—इदन्न मम॥ ५॥ —कात्यायनश्रौत० २५।१।११

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्य-मित्त्वमया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम॥ ६॥ —कात्यायनश्रौत० २५।१।११

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायऽऽदित्या-याऽदितये च—इदन्न मम॥ ७॥ —ऋ० १।२४।१५

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञं हिं सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम्॥ ८॥ —यजुः० ५।३

प्रधान होम

अष्टाज्याहुति देके प्रधानहोम का प्रारम्भ करें। प्रधानहोम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण कन्धे का स्पर्श करके निम्नलिखित मन्त्रों से पाँच आज्याहुति दे।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः॥ आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥ १॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः॥ तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥ २॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्॥ दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥ ३॥

—ऋ० ९।६६।१९-२१

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ ४ ॥ —ऋ० १०।१२१।१०

ओं भूर्भुवः स्वः। त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि। अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोलके पाँचवीं आज्याहुति देनी। तत्पश्चात्—

राष्ट्रभृत् होम

ओम् ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्॥ इदमृताषाहे ऋतधाम्नेऽग्नये गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥ १ ॥

ओम् ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम। ताभ्यः स्वाहा ॥ इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः—इदन्न मम ॥ २ ॥

ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्॥ इदं सꣳहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम। ताभ्य स्वाहा। इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः—इदन्न मम ॥ ४ ॥

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्॥ इदं सुषुम्णाय सूर्यरश्मये चन्द्रमसे गन्धर्वाय—इदन्न मम॥५॥

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। ताभ्यः स्वाहा॥ इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः—इदन्न मम॥६॥

ओम् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्॥ इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय—इदन्न मम॥७॥

ओम् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम। ताभ्यः स्वाहा॥ इदमद्भ्योऽप्सरोभ्यऽऊर्ग्भ्यः—इदन्न मम॥८॥

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्॥ इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय—इदन्न मम॥९॥

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम। ताभ्यः स्वाहा॥ इदं दक्षिणाभ्योऽप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः—इदन्न मम॥१०॥

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्॥ इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय—इदन्न मम॥११॥

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम। ताभ्यः स्वाहा॥ इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः—इदन्न मम॥ १२॥

इन बारह मन्त्रों से बारह आज्याहुति देनी। तत्पश्चात्—

जयाहोम

ओं चित्तं च स्वाहा॥
इदं चित्ताय—इदन्न मम॥ १॥
ओं चित्तिश्च स्वाहा॥
इदं चित्त्यै—इदन्न मम॥ २॥
ओम् आकूतं च स्वाहा॥
इदमाकूताय—इदन्न मम॥ ३॥
ओम् आकूतिश्च स्वाहा॥
इदमाकूत्यै—इदन्न मम॥ ४॥
ओं विज्ञातं च स्वाहा॥
इदं विज्ञाताय—इदन्न मम॥ ५॥
ओं विज्ञातिश्च स्वाहा॥
इदं विज्ञात्यै—इदन्न मम॥ ६॥
ओं मनश्च स्वाहा॥
इदं मनसे—इदन्न मम॥ ७॥
ओं शक्वरीश्च स्वाहा॥
इदं शक्वरीभ्यः—इदन्न मम॥ ८॥
ओं दर्शश्च स्वाहा॥
इदं दर्शाय—इदन्न मम॥ ९॥

ओं पौर्णमासं च स्वाहा॥
इदं पौर्णमासाय—इदन्न मम॥ १०॥
ओं बृहच्च स्वाहा॥
इदं बृहते—इदन्न मम॥ ११॥
ओं रथन्तरं च स्वाहा॥
इदं रथन्तराय—इदन्न मम॥ १२॥

ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णो प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु। तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहा॥ इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय—इदन्न मम॥ १३॥

इन प्रत्येक मन्त्र से एक-एक करके जयाहोम की तेरह आज्याहुति देनी। तत्पश्चात्—

अभ्यातन-होम

ओम् अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा॥ इदमग्नये भूतानामधिपतये—इदन्न मम॥ १॥

ओम् इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा॥ इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये—इदन्न मम॥ २॥

ओं यमः पृथिव्याऽअधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा॥ इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये—इदन्न मम॥ ३॥

ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याॅं स्वाहा ॥ इदं वायवे अन्तरिक्षस्याधिपतये—इदन्न मम ॥ ४ ॥

ओं सूर्यो दिवोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याॅं स्वाहा ॥ इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये—इदन्न मम ॥ ५ ॥

ओं चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याॅं स्वाहा ॥ इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये—इदन्न मम ॥ ६ ॥

ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याॅं स्वाहा ॥ इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोऽधिपतये—इदन्न मम ॥ ७ ॥

ओं मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याॅं स्वाहा ॥ इदं मित्राय सत्यानामधिपतये—इदन्न मम ॥ ८ ॥

ओं वरुणोऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याॅं स्वाहा ॥ इदं वरुणायापामधिपतये—इदन्न मम ॥ ९ ॥

ओं समुद्रः स्त्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा ॥ इदं समुद्राय स्त्रोत्यानामधिपतये—इदन्न मम ॥ १० ॥

ओम् अन्नᳫंसाम्राज्यानामधिपतिस्तन्मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा ॥ इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये—इदन्न मम ॥ ११ ॥

ओं सोमऽओषधीनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा ॥ इदं सोमाय ओषधीनामधिपतये—इदन्न मम ॥ १२ ॥

ओं सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा ॥ इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये—इदन्न मम ॥ १३ ॥

ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा ॥ इदं रुद्राय पशूनामधिपतये—इदन्न मम ॥ १४ ॥

ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा ॥ इदं त्वष्ट्रे रूयाणामधिपतये—इदन्न मम ॥ १५ ॥

ओं विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा॥ इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये—इदन्न मम॥ १६॥

ओं मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा॥ इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः-इदन्न मम॥ १७॥

ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहा इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामा-शिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा॥ इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्य-स्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च—इदन्न मम॥ १८॥

इस प्रकार अभ्यातन होम की अठारह आज्याहुति दिये पीछे, पुनः—

आठ विशेष आज्याहुति

ओम् अग्निरैतु प्रथमो देवतानाᳬ सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयᳯ राजा वरुणोऽनु-मन्यतां यथेयᳯ स्त्री पौत्रमघन्न रोदात् स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ १॥

ओम् इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः। अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियᳬ स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ २॥

ओम् स्वस्ति नोऽग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र। यदस्यां मयि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रथं३ स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ ३॥

ओं सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्नऽ आयुः। अपैतु मृत्युरमृतं म आगाद् वैवस्वतो नोऽअभयं कृणोतु स्वाहा॥ इदं वैवस्वताय—इदन्न मम॥ ४॥

ओं परं मृत्योऽअनु परेहि पन्थां यत्र नोऽअन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाथं३ रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा॥ इदं मृत्यवे—इदन्न मम॥ ५॥

ओं द्यौस्ते पृष्ठꣳ रक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च। स्तन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वावाससः परिधानाद् बृहस्पतिर्विश्वेदेवा अभिरक्षन्तु पश्चात् स्वाहा॥ इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः—इदन्न मम॥ ६॥

ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्त्थादन्यत्र त्वद् रुदत्यः संविशन्तु। मा त्वꣳ रुदत्युरऽआवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजाथं३ सुमनस्यमानाथं३ स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ ७॥

ओम् अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यपाप्मानमुत वाऽअघम्। शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशथं३ स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ ८॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक-एक आहुति करके आठ आज्याहुति दीजिए। तत्पश्चात्—

व्याहृति आहुतियाँ

ओं भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय—इदन्न मम॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम॥

इन चार मन्त्रों से चार आज्याहुति दीजिए। ऐसे होम करके वर आसन से उठ, पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सम्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वामहस्त से वधू का दाहिना हाथ चत्ता धरके ऊपर को उचाना और अपने दक्षिण हाथ से वधू की उठाई हुई दक्षिण हस्ताञ्जलि को अंगुष्ठसहित चत्ती ग्रहण करके, वर— हस्त मिलाप

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥ १॥[1]

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव॥ २॥[2]

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्॥ ३॥[3]

---

१. हे देवि! मैं ऐश्वर्य, सुसन्तान आदि सौभाग्य की वृद्धि के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। तू वृद्धावस्था तक मेरे साथ सुखपूर्वक रह। संसार के उत्पादक और धारक प्रभु ने और सभामण्डप में बैठे हुए विद्वान् लोगों ने तुम्हें गृहस्थाश्रम के लिए मुझे दिया है।

२. हे प्रिये! ऐश्वर्ययुक्त तथा धर्ममार्ग में प्रेरक मैं तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। तू धर्म से मेरी पत्नी है और मैं धर्म से तेरा गृहपति हूँ।

३. हे अनघे! सब जगत् के पालक परमात्मा ने जिस तुझको मुझे दिया है, वह तू मेरी पालन-पोषण करने योग्य पत्नी है। तू मुझ पति के साथ उत्तम सन्तानवाली होकर सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीवन धारण कर।

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्। तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया॥ ४॥[१]

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा। बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु॥ ५॥[२]

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन् मनसः कुलायम्। न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्॥ ६॥[३] —अथर्व० १४।१।५७

सूचनार्थ एक परिक्रमा

इन पाणिग्रहण के छह मन्त्रों को बोलके, पश्चात् वर वधू की हस्ताञ्जलि पकड़के उठावे और उसको साथ लेके जो कलश कुण्ड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था, उसको वही पुरुष जो कलश के पास बैठा था, वर-वधू के साथ लेकर चले। यज्ञकुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा करके—

---

१. हे वरानने! प्रभु के रचे इस संसार में हम ज्ञानी जनों की भाँति अपना जीवन व्यतीत करें। तू सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर बादलों में चमकनेवाली विद्युत् के समान मेरे चित्त को प्रसन्न किया कर। परमात्मा तुझे प्रजा से युक्त करे। मैं सूर्य की किरणों के समान वस्त्र और आभूषण आदि से तुझे सदा शोभित रखूँगा।

२. हे उपस्थित विद्वानो और मान्य सम्बन्धियो! जैसे इन्द्र और अग्नि, द्युलोक और भूमि, वायु, मित्र और वरुण, ऐश्वर्य, वैद्य और उपदेशक, बृहस्पति, मरुत्, ब्रह्म, सोम—से सब इस स्त्री को प्रजा से बढ़ाया करते हैं, वैसे हम दोनों मिलके गृहस्थाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें।

३. हे कल्याणि! मैं कुल की वृद्धि को देखता हुआ तेरे रूप को प्राप्त होता हूँ, तू भी प्रेमपूर्वक मुझमें व्याप्त होकर अनुकूल व्यवहार को प्राप्त हो। मैं मन से भी तेरे साथ चोरी को छोड़ता हूँ और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से भोग नहीं करूँगा। पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी गृहस्थ की सब विघ्न-बाधाओं को दूर करता रहूँगा।

वर और वधू

ओम् अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहम्। सामाहस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम्॥ ७ ॥[१]

इन प्रतिज्ञा-मन्त्रों से दोनों प्रतिज्ञा करके—

पश्चात् वर वधू के पीछे रहके, वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रहके, वधू की दक्षिणाञ्जलि अपनी दक्षिणाञ्जलि से पकड़के दोनों खड़े रहें और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश लेके वैसे बैठे। तत्पश्चात् वधू की माता अथवा भाई जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी सूप में रक्खी थी, उसको बाएँ हाथ में लेके दाहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवाके पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर—

६. शिलारोहण

ओम् आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳस्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः॥ १ ॥[२]

---

१. हे वधू! जैसे मैं ज्ञानपूर्वक तेरा हाथ ग्रहण कर रहा हूँ, वैसे तू भी ज्ञानपूर्वक मेरा ग्रहण कर रही है। मैं सामवेद के समान हूँ, तू ऋग्वेद के समान है। तू पृथिवी के समान है और मैं सूर्य के समान हूँ। हम दोनों प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें। साथ मिलके वीर्य को धारण करें, उत्तम प्रजा को उत्पन्न करें और बहुत पुत्रों को प्राप्त होवें। वे पुत्र जरावस्थापर्यन्त जीवनयुक्त रहें, अच्छे प्रकार एक-दूसरे से प्रसन्न, एक-दूसरे में रुचि-युक्त, शुभ मनवाले होकर सौ वर्ष तक एक-दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखते रहें, सौ वर्ष-पर्यन्त आनन्द से जीते रहें और सौ वर्ष-पर्यन्त प्रिय वचनों को सुनते रहें।

२. हे देवि! इस शिला के ऊपर चढ़ और इस शिला की भाँति गृहस्थ-कार्यों में अटल रह। कलहकारियों को और सेना के द्वारा लड़नेवालों को इस शिला की भाँति दबा दे।

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात् वधू-वर कुण्ड के समीप आके पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और यहाँ वधू दक्षिण ओर रहके अपनी हस्ताञ्जलि को वर की हस्ताञ्जलि पर रक्खे।

तत्पश्चात् वधू की माँ या भाई, जो बाएँ हाथ में धाणी का सूपड़ा पकड़के खड़ा रहा हो, वह धाणी का सूपड़ा भूमि पर धर अथवा किसी के हाथ में देके, जो वधू-वर की एकत्र की हुई, अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्ताञ्जलि है, उसमें प्रथम थोड़ा घृत सिंचन करके, पश्चात् प्रथम सूप में से दाहिने हाथ की अञ्जलि से दो बार लेके वर-वधू की एकत्र की हुई अञ्जलि में धाणी डाले। पश्चात् उस अञ्जलिस्थ धाणी पर थोड़ा-सा घी सिंचन करे। पश्चात् वधू वर की हस्ताञ्जलिसहित अपनी हस्ताञ्जलि को आगे से नमाके—

७. लाजाहोम

प्रथम परिक्रमा

मन्त्र कन्या बोले—

ओम् अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा॥ इदमर्यम्णे अग्नये—इदन्न मम॥ १॥[1]

ओम् इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ २॥[2]

ओम् इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ ३॥[3]

---

१. कन्याएँ न्यायकारी प्रकाशमान भगवान् की पूजा करती हैं, वह न्यायकारी दिव्यस्वरूप परमात्मा हमें पितृकुल से छुड़ावे, परन्तु पति से अलग न करे।

२. यज्ञ में खीलों को डालती हुई यह नारी कहती है, मेरा पति दीर्घायु हो, और मेरे कुटुम्ब के लोग धन-धान्यादि से बढ़ें।

३. पतिदेव! आपकी समृद्धि के लिए मैं इन खीलों को अग्नि में छोड़ती हूँ। मैं और आप परस्पर प्रेमपूर्वक रहें, इसमें प्रभु हमारा सहायक हो।

इन तीन मन्त्रों में एक-एक मन्त्र से एक-एक बार थोड़ी-थोड़ी धाणी की आहुति तीन बार प्रज्वलित ईंधन पर देके, वर—

हस्ताञ्जलि ग्रहण करने का मन्त्र

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतः समभवद् यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥ १॥[1]

इस मन्त्र को बोलके अपने दाहिने हाथ से वधू की हस्ताञ्जलि पकड़के—

प्रदक्षिणा के समय बोलने का मन्त्र

ओं तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ १॥[2]

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयमप दीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः॥ २॥[3]

इन मन्त्रों को पढ़, यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके, यज्ञकुण्ड के पश्चिमभाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें। तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार वर वधू की एकत्र हस्ताञ्जलि में घृत-सिंचन आदि करके—

---

१. हे सुन्दर ऐश्वर्यशाली, सौभाग्यवती! तू इस यज्ञ की रक्षा कर, जिसमें इस संसार के उत्पन्न होने से पहले ये सब भूत उत्पन्न होते वा रहते हैं। मैं आज से तेरे प्रति उस गाथा को गाऊँगा जो स्त्रियों के लिए उत्तम यश है।

२. हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! तुम्हारी आज्ञा पालन करने के लिए इस कन्या को प्रधानरूप से स्वीकार किया है। यह कन्या सूर्य की शोभा को प्राप्त हो। कालान्तर में पुत्रों के साथ मुझ पति के लिए भार्यात्व को प्राप्त हुई इस कन्या को मुझे प्रदान कीजिए।

३. यह कन्या पितृगृह से पति के घर को जाती है, पति-सम्बन्धी दीक्षा को प्राप्त कर चुकी है। यह सदा मुझ पति के साथ रहे, जिससे हम मिलकर वेगवती धाराओं के समान कामादि शत्रुओं को नष्ट कर सकें।

दूसरी परिक्रमा

मन्त्र कन्या बोले—

ओम् अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा॥ इदमर्यम्णे अग्नये—इदन्न मम॥ १॥

ओम् इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ २॥

ओम् इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ ३॥

इन तीन मन्त्रों में एक-एक मन्त्र से एक-एक बार थोड़ी-थोड़ी धाणी की आहुति तीन बार प्रज्वलित ईंधन पर दे।

हस्ताञ्जलि पकड़ने का मन्त्र

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतꣳ समभवद् यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥ १॥

इस मन्त्र को बोलके अपने दाहिने हाथ से वधू की हस्ताञ्जलि पकड़के—

प्रदक्षिणा के समय बोलने का मन्त्र

ओं तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।

पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ १॥

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयमप दीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः॥ २॥

इन मन्त्रों को पढ़के वर आगे रहकर कलशसहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके, यज्ञकुण्ड के पश्चिमभाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें। तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार वर-वधू की एकत्र हस्ताञ्जलि में घृत-सिंचन आदि करके—

तीसरी परिक्रमा

मन्त्र कन्या बोले—

ओम् अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा॥ इदमर्यम्णे अग्नये—इदन्न मम॥ १॥

ओम् इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ २॥

ओम् इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियः स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ ३॥

इन तीन मन्त्रों में एक-एक मन्त्र से एक-एक बार थोड़ी-थोड़ी धाणी की आहुति तीन बार प्रज्वलित ईंधन पर दे।

हस्ताञ्जलि पकड़ने का मन्त्र

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतः समभवद् यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥ १॥

इस मन्त्र को बोलके अपने दाहिने हाथ से वधू की हस्ताञ्जलि पकड़के—

प्रदक्षिणा के समय बोलने का मन्त्र

ओं तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ १॥

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयमप दीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः ॥ २ ॥

इन मन्त्रों को पढ़कर वर आगे रहकर कलशसहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके, यज्ञकुण्ड के पश्चिमभाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें। पश्चात् वधू की माँ अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उस सूप में बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्ताञ्जलि में डाल देवे। पश्चात् वधू—

चौथी परिक्रमा

मन्त्र कन्या बोले—

ओं भगाय स्वाहा। इदं भगाय—इदन्न मम॥

इस मन्त्र को बोलकर प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उसी धाणी की एक आहुति देवे—

हस्ताञ्जलि पकड़ने का मन्त्र

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतꣳ समभवद् यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोलके अपने दाहिने हाथ से वधू की हस्ताञ्जलि पकड़के—

प्रदक्षिणा के समय बोलने का मन्त्र

ओं तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ १ ॥

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयमप दीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः॥ २ ॥

इन मन्त्रों को पढ़के वर आगे रहकर कलश सहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके, यज्ञकुण्ड के पश्चिमभाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें। तत्पश्चात् वर वधू को दक्षिणभाग में रखके कुण्ड के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठके—

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोलके स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे। तत्पश्चात् एकान्त में जाके वधू के बँधे हुए केशों को वर—

ओं प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥ १ ॥[1]

ओं प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्। यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ २ ॥[2]

इन दोनों मन्त्रों को बोलके प्रथम वधू के केशों को छोड़ना। तत्पश्चात् सभामण्डप में आके 'सप्तपदी-विधि' का आरम्भ करे। इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गाँठ देनी, इसे 'जोड़ा' कहते हैं। वधू-वर दोनों जने आसन पर से उठके वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जलि पकड़के यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में जाए। तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्ध पर रखके दोनों समीप-समीप उत्तराभिमुख खड़े रहें। तत्पश्चात् वर—

---

१. हे देवि! मैं तुझे माता-पिता के बन्धन से छुड़ाकर सुखकारक गृहस्थ के मार्ग में लगाता हूँ। मैं पति-भाव के साथ तेरे पोषण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

२. हे देवि! मैं तुझे पितृकुल से छुड़ाता हूँ, परन्तु पतिकुल से नहीं। मैं प्रयत्न करूँगा कि तू पतिकुल में स्नेह-रज्जु से अच्छी प्रकार बँधी रह सके। मुझ ऐश्वर्यशाली पति के साथ तू ऐश्वर्यसम्पन्न और उत्तम पुत्रोंवाली हो।

मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम ॥[१]

ऐसा बोलके वधू को उसका दक्षिण पग उठवाके चलने के लिए आज्ञा देवे—

८. सप्तपदी

ओम् इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ १ ॥[२]

इस मन्त्र को बोलके वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान दिशा में एक पग[३] चले और चलावे।

ओम् ऊर्ज्जे द्विपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ २ ॥[४]

ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ ३ ॥[५]

---

१. तेरा बायाँ पैर दाहिने पैर का अतिक्रमण न करे।
Let not thy claims exceed thy achievements.
अर्थात् जीवन-यात्रा में पुरुषार्थ से अधिक फल-प्राप्ति की इच्छा न कर।

२. अन्न के लिए पहला पग उठा। मेरे व्रत में मेरा अनुसरण कर, परमात्मा तेरा मार्गदर्शक हो। प्रभु की कृपा से हम बहुत-से पुत्रों को प्राप्त करें और वे सब दीर्घजीवी हों।

३. इस पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा पग उठाके ईशानकोण की ओर बढ़ाके धरे, तत्पश्चात् दूसरे बाएँ पग को उठाके जमणे पग की पटली तक धरे, अर्थात् जमणे पग के थोड़ा-सा पीछे बायाँ पग रक्खे। इसी को एक पग गिनना। इसी प्रकार अगले छह मन्त्रों से भी यही क्रिया करनी, अर्थात् एक-एक मन्त्र से एक-एक पग ईशान दिशा की ओर धरना। —द०स०

४. बल के लिए दूसरा पग रख। शेष पूर्ववत्।

५. धन-धान्य की समृद्धि के लिए तीसरा पग रख। शेष पूर्ववत्।

ओं मायोभव्याय चतुष्पदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ ४ ॥[१]

ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ ५ ॥[२]

ओम् ऋतुभ्यः षट्पदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ ६ ॥[३]

ओं सखा सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ ७ ॥[४]

इस मन्त्र से सातवाँ पग चलना। इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चलाके वधू-वर दोनों गाँठ बँधे हुए शुभासन पर बैठें।

तत्पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को लेके यज्ञकुण्ड के दक्षिण में बैठाया था, वह पुरुष उस पूर्व-स्थापित जलकुम्भ को लेके वधू-वर के समीप आये और उसमें से थोड़ा-सा जल लेके वधू-वर के मस्तक पर छिटकाए, और वर—

ओम् आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽ ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

---

१. सुख-प्राप्ति के लिए चौथा पग रख। शेष पूर्ववत्।

२. सन्तान के लिए पाँचवाँ पग रख। शेष पूर्ववत्।

३. ऋतुओं की अनुकूलता के लिए छठा पग रख। शेष पूर्ववत्।

४. प्रगाढ़ प्रेम और मित्रता के लिए सातवाँ पग रख। शेष पूर्ववत्।

तस्मा॒ऽअरं॑ गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ। आपो॑ ज॒नय॑था च नः॥ ३॥[1]

ओम् आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्॥ ४॥

इन चार मन्त्रों को बोले। तत्पश्चात् वधू-वर वहाँ से उठके—

९. सूर्यदर्शन

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ १॥[2]

इस मन्त्र को पढ़के सूर्य का अवलोकन करें। तत्पश्चात् वर वधू के दक्षिण स्कन्ध पर अपना दक्षिण हाथ लेके उससे वधू का हृदय-स्पर्श करके—

१०. हृदय-स्पर्श

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥[3]

---

१. इन मन्त्रों की भावना—
यह जल शान्तिदायक, बल बढ़ानेवाला, समृद्धि का कारण और माता के समान कल्याणकारी हो। यह जल स्वास्थ्यप्रद और आरोग्यता प्रदान करनेवाला हो।

२. हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप विद्वानों के हितकारी, शुद्ध नेत्र के तुल्य सबको दिखानेवाले, अनादिकाल से सबके ज्ञाता हैं। उस आपको हम सौ वर्ष पर्यन्त देखें और आपकी कृपा से सौ वर्ष तक जीएँ, सौ वर्ष तक बोलें, सौ वर्ष तक दीनता-रहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, सुनें, जीएँ और अदीन रहें।

३. हे वधू! मैं तेरे अन्तःकरण और आत्मा को अपने कर्म के अनुकूल धारण करता हूँ। मेरे चित्त के अनुकूल तेरा चित्त सदा रहे। मेरी वाणी को तू एकाग्रचित्त से सेवन किया कर। प्रजा का पालन करनेवाला परमात्मा तुझको मेरे लिए नियुक्त करे।

इस मन्त्र को बोले और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥[1]

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ धरके—

वर का वधू को आशीर्वाद निमित्त निवेदन

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं वि परेतन॥[2]

इस मन्त्र को बोलके कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करना और उस समय सब लोग—

११. आशीर्वाद

ओं सौभाग्यमस्तु। ओं शुभं भवतु॥[3]

इस वाक्य से आशीर्वाद देवें। तत्पश्चात् वधू-वर यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठके दोनों—

---

१. हे प्रियवर स्वामिन्! मैं आपके हृदय, आत्मा और अन्तःकरण को अपने प्रियाचरण कर्म में धारण करती हूँ। मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे। आप एकाग्र होके मेरी वाणी का—जो कुछ मैं आपसे कहूँ उसका—सेवन सदा किया कीजिए, क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आपको मेरे अधीन किया है, वैसे मुझको आपके अधीन किया है, अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनों वर्त्ता करें, जिससे सर्वदा आनन्दित और कीर्तिमान पतिव्रता और स्त्रीव्रत होके सब प्रकार के व्यभिचार, अप्रिय भाषणादि को छोड़के परस्पर प्रीतियुक्त रहें। —द०स०

२. हे विद्वान् लोगो! यह वधू मङ्गलकारिणी है, इसको कृपा-दृष्टि से देखो और इसके लिए आशीर्वाद देकर अपने घर के प्रति जाओ, परन्तु पराङ्मुख होकर न जाओ, किन्तु पुत्रादि की मङ्गलकामना से फिर भी आते रहो।

३. तुम्हारा सौभाग्य अचल हो! गृह में सब प्रकार से कल्याण हो!

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम॥

इस स्विष्टकृत् मन्त्र से होमाहुति अर्थात् एक आज्याहुति और—

व्याहृति आहुतियाँ

ओं भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय — इदन्न मम॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम॥

इत्यादि चार मन्त्रों से एक-एक से एक-एक आहुति करके चार आज्याहुति देवें और इस प्रमाणे विवाह की विधि पूरे हुए पश्चात् दोनों जने आराम, अर्थात् विश्राम करें।

इति पूर्वविधिः॥

अथ उत्तरविधिः

थोड़ा-सा विश्राम करके विवाह की उत्तरविधि करें। यह उत्तरविधि वधू के घर की ईशानदिशा में, जहाँ विशेष करके एक घर प्रथम से बना रक्खा हो, वहाँ जाके करनी।

पूर्वविधि पूरे हुए पश्चात्, सूर्य अस्त हुए पीछे जब आकाश में नक्षत्र दीखें, उस समय वधू-वर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठें और अग्न्याधान—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥

इस मन्त्र से करें। यदि प्रथम ही सभा मण्डप ईशानदिशा में हुआ हो और प्रथम अग्न्याधान हुआ हो तो अग्न्याधान न करें।

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ १॥

इससे पहली समिधा चढ़ाएँ।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ २॥

इससे और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ ३॥

इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा चढ़ाएँ।

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम॥ ४॥

इत्यादि चार मन्त्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे तब—

आघारावाज्यभागाहुतिमन्त्राः

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ १॥

इस मन्त्र से उत्तरभाग में,

ओम् सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय—इदन्न मम॥ २॥

इस मन्त्र से दक्षिणभाग में,

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥ ३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम॥ ४॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी।

व्याहृति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ १॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे-इदन्न मम॥ २॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय-इदन्न मम॥ ३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम॥ ४॥

ये सब मिलके आठ आज्याहुति देवें। तत्पश्चात् प्रधान होम करें, निम्नलिखित मन्त्रों से—

ओं लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वारोकेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा॥ इदं कन्यायै—इदन्न मम॥ १॥

ओं केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा॥ इदं कन्यायै—इदन्न मम॥ २॥

ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा॥ इदं कन्यायै—इदन्न मम॥ ३॥

ओम् आरोकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै—इदन्न मम ॥ ४ ॥

ओम् ऊर्वोरुपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै—इदन्न मम ॥ ५ ॥

ओं यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन्। पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै—इदन्न मम ॥ ६ ॥

ये छह मन्त्र हैं। इनमें से एक-एक मन्त्र बोलके छह आज्याहुति देनी। पश्चात्—

व्याहृति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥ १ ॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम ॥ २ ॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम ॥ ४ ॥

इन चार व्याहृति-मन्त्रों से चार आज्याहुति देके वधू-वर वहाँ से उठके सभा-मण्डप से बाहर उत्तर दिशा में जाएँ। तत्पश्चात् वर—

१२. ध्रुव तथा अरुन्धती-दर्शन

ध्रुवं पश्य ॥

ऐसा बोलके वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे और वधू वर से बोले कि—

पश्यामि ॥

मैं ध्रुव-तारे को देखती हूँ।

तत्पश्चात् वधू बोले—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम्[१] (अमुष्य[२] असौ)॥

इस मन्त्र को बोलके, तत्पश्चात्—

अरुन्धतीं पश्य॥

ऐसा वाक्य बोलके वर वधू को अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू—

पश्यामि॥

मैं देखती हूँ।

ऐसा कहके—

ओम् अरुन्धत्यसि रुद्धाहमस्मि[३] (अमुष्य, असौ)॥

इस मन्त्र को बोलके वर वधू की ओर देखके वधू के मस्तक पर हाथ धरके—

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्॥[४]

---

१. हे ध्रुव नक्षत्र! जैसे तू निश्चल है, वैसे ही मैं पतिकुल में निश्चल रहूँ।

२. 'अमुष्य' पद के स्थान में षष्ठी विभक्त्यन्त पति का नाम बोलना जैसे शिवशर्मा पति का नाम हो तो शिवशर्मणः, और 'असौ' पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथम विभक्त्यन्त बोले जैसे—**भूयासं शिवशर्मणस्ते सौभाग्यदाहम्॥** —द०स०

३. अरुन्धती तारिके! जैसे तू सप्तर्षि नामक तारों के निकट सदा रुकी रहती है, वैसे ही मैं अपने पति के नियम में रुक गई हूँ।

४. हे वरानने! जैसे सूर्य की कान्ति विद्युत् सूर्यलोक वा पृथिव्यादि में निश्चल, जैसे भूमि अपने स्वरूप में स्थिर, जैसे यह सब संसार प्रवाहरूप में स्थिर है, जैसे यह प्रत्यक्ष पहाड़ अपनी स्थिति में स्थिर हैं, वैसे तू मेरी पत्नी मेरे कुल में सदा स्थिर रह।

ओं ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि। मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम्।।[१]

इन दोनों मन्त्रों को बोले। पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख होके कुण्ड के समीप बैठें और—

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।। १ ।।

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा।। २ ।।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।। ३ ।।

इन तीन मन्त्रों से तीन आचमन दोनों करें। पश्चात् समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करके घृत और स्थालीपाक, अर्थात् भात को उसी समय बनावें। फिर—

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म-वर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम।। १ ।।

इससे पहली

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा।। इदमग्नये—इदन्न मम।। २ ।।

इससे और

---

१. हे स्वामिन्! जैसे आप मेरे समीप दृढ़–सङ्कल्प करके स्थिर हैं या जैसे मैं आपको दृढ़–स्थिर देखती हूँ, वैसे ही सदा के लिए मेरे साथ आप दृढ़ रहिएगा, क्योंकि मेरे मन के अनुकूल आपको परमात्मा समर्पित कर चुका है। मुझ पत्नी के साथ प्रजायुक्त होके आप सौ वर्ष–पर्यन्त जीएँ। तथा हे वरानने पत्नी! धारण और पालन करने योग्य मुझ पति के निकट स्थिर रह, मुझको अपनी मनसा के अनुकूल तुझे परमात्मा ने दिया है। तू मुझ पति के साथ बहुत उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष–पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण कर।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ ३॥

इस मन्त्र से अर्थात् दोनों से दूसरी

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम॥ ४॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

इन चार मन्त्रों से समिधा-होम दोनों करें। पश्चात्—

आघारावाज्यभागाहुतिमन्त्र

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ १॥

इस मन्त्र से उत्तरभाग अग्नि में,

ओम् सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय-इदन्न मम॥ २॥

इस मन्त्र से दक्षिणभाग अग्नि में,

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥ ३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम॥ ४॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी।

व्याहृति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ १॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे-इदन्न मम॥ २॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय—इदन्न मम॥ ३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम॥ ४॥

फिर जो सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात है, उसको एक पात्र में निकालकर उसके ऊपर स्रुवा से घृत-सेचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिलाकर दक्षिण हस्त से थोड़ा-थोड़ा भात दोनों जने लेके—

भात का विशेष होम

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा॥

इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः—इदन्न मम॥

ओम् अनुमतये स्वाहा॥ इदमनुमतये—इदन्न मम॥

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक करके चार भात की आहुति देनी। तत्पश्चात्—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुतेसर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम॥

इस स्विष्टकृत् मन्त्र से होमाहुति अर्थात् एक आज्याहुति और—

व्याहृति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय-इदन्न मम॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम॥

अष्टाज्याहुति

ओं त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ १॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ २॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम॥ ३॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम॥ ४॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्त्रं यज्ञिया पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—इदन्न मम॥ ५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम॥ ६॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायऽऽदित्या-याऽदितये च—इदन्न मम॥ ७॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम्॥ ८॥

तत्पश्चात् शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकालके, उसपर घृत-सेचन कर और दक्षिण हाथ रखके—

ओम् अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना।
बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते[1]॥ १॥
ओम् यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम।
यदिदꣳ हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव[2]॥ २॥
ओम् अन्नं प्राणस्य षड्विꣳशस्तेन बध्नामि त्वा असौ[3]॥ ३॥[4]

---

१. हे वधू अथवा हे वर! जैसे अन्न के साथ प्राण, प्राण के साथ अन्न तथा अन्न और प्राण का अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध है, वैसे मैं तेरे हृदय, मन और चित्त आदि को सत्य की गाँठ से बाँधता वा बाँधती हूँ।

२. हे स्वामिन् वा हे पत्नी! जो यह तेरा आत्मा वा अन्तःकरण है, वह मेरे आत्मा वा अन्तःकरण के तुल्य प्रिय हो और मेरा जो यह आत्मा, प्राण और मन है सो तेरे आत्मादि के तुल्य सदा प्रिय रहे।

३. 'असौ' के स्थान पर कन्या का नाम बोलना, जैसे—हे यशोदे वधू!

४. जो प्राण का पोषण करनेहारा २६वाँ तत्त्व अन्न है, उससे मैं तुझे दृढ़ प्रीति से बाँधता वा बाँधती हूँ।

१३. वर-वधू का सहभोजन

इन तीनों मन्त्रों को मन से जपके वर उस भात में से प्रथम थोड़ा-सा भक्षण करके, जो उच्छिष्ट=शेष भात रहे वह अपनी वधू के लिए खाने को देवे और जब वधू उसे खा चुके, तब वधू-वर यज्ञमण्डप में सन्नद्ध हुए शुभासन पर नियम प्रमाणे पूर्वाभिमुख बैठें, पश्चात् महावामदेव्यगान करें।

महावामदेव्यगान

ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥ १॥

ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु॥ २॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतये॥ ३॥

महावामदेव्यम्

काऽ५या नश्चा३ यित्रा३ आभुवात्। ऊ। ती सदावृधः स। खा। औ३ होहायि। कया२३ शचायि। ष्ठयौहो३। हुंमा२। वाऽ२र्तो३ऽ५हायि॥ १॥

काऽ५स्त्वा। सत्यो३मा३दानाम्। मा। हिष्ठो मात्सादन्ध। सा। औ३होहायि। दृढा२३ चिदा। रुजौहो३। हुम्मा२। वाऽ३सो३ऽ५हायि॥ २॥

आ३ऽ५भी। षु णा३ः सा३खीनाम्। आ। विता जरायि तृ। णाम्। औ२३ हो हायि। शता२३म्भवा। सियोहो३ हुम्मा२। ताऽ२ यो३ऽ५ हायि॥ ३॥

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता आगत सज्जनों का यथावत् सत्कार करके आचार्य ऋत्विजों को दक्षिणा व धार्मिक संस्थाओं के लिए दान देकर विदा करें।

चतुर्थी कर्म

फिर दश घटिका रात्रि जाए, तब वधू और वर पृथक्-पृथक् स्थान में भूमि में बिछौना करके तीन रात्रिपर्यन्त ब्रह्मचर्य-व्रतसहित रहकर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे। तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधानसंस्कार करें। यदि चौथे दिवस कोई अड़चन आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्यव्रत में दृढ़ रहें। फिर जिस दिन दोनों की इच्छा हो और शास्त्रोक्त गर्भाधान की रात्रि भी हो उसमें यथाविधि गर्भाधान करें।

॥ इति उत्तरविधिः ॥

पिता की सीख

सुते!
लोग कहते हैं यह शुभ घड़ी है।
घड़ी शुभ तो है कष्टदायक बड़ी है।
समझता है वह इसको जिसपर पड़ी है।
कि माता-पिता को निहायत कड़ी है॥
जुदा इसमें होता है टुकड़ा जिगर का।
हटाना ही पड़ता है दीपक यह घर का॥
नहीं बेसबब आँसुओं की रवानी।
किसी दुःख की आँसू हैं ये निशानी।
सुता-प्रेम बहने लगा बनके पानी।
हुई पानी-पानी मेरी बुद्धिमानी॥
यह माना कि दिल का है अरमान निकला।
मगर धैर्य से मोह बलवान् निकला॥
समय है कि कुछ तुझको उपहार दूँ मैं।
कोई वस्त्र या कुछ अलङ्कार दूँ मैं।
मयस्सर जो हो तो रतनहार दूँ मैं।
न इक बार ही बल्कि सौ बार दूँ मैं॥
न दूँगा तो हो जाएगी बात हेटी।
तो ले कुछ-न-कुछ तुझको देता हूँ बेटी॥
न हीरे न मोती न अनमोल मनके।
न कलियों की माला न जूड़े सुमन के।
ऋणी क्यों हों सर्राफ़ के या चमन के।
नहीं अङ्ग-भूषण ये भूषण हैं मन के॥
अगर यह अलङ्कार स्वीकार होगा।
तो तेरा भी आदर्श श्रृंगार होगा॥
जो निन्दा करे कोई नारी किसी की।
तो ज़ाहिर न करना कभी राय अपनी।

मुनासिब है उस वक्त केवल खमूशी।
करेगी वही वर्ना खुद तेरी चुग़ली॥
तेरे सिर पै आ जाएगी सब बुराई।
यूँ घर बैठे तू मोल लेगी लड़ाई॥

ससुर हों कि भर्तार के ज्येष्ठ भ्राता।
जिठानी हों या सास का जिनसे नाता।
उन्हें तू समझना पिता और माता।
कि सन्तोष हो तुझको हे मेरी जाता!
सुता देवरानी है सुत-तुल्य देवर।
यही तो है कुलवान कन्या का ज़ेवर॥

बिगड़ना न बेवास्ता दासियों पर।
न बल तोलना अपने चपरासियों पर।
दयाभाव रखना भवन-वासियों पर।
भरोसा सदा करना विश्वासियों पर॥
न बन बैठना शहद की मूर्ख मक्खी।
कमाई कभी दान की और न चक्खी॥

यथोचित यथाशक्ति तू दान देना।
न उल्टा हो वो, पात्र को देख लेना।
रंगे स्यार को दूध फेनी व फेना।
मिले वृद्ध संन्यासियों को चबेना॥
न हो जाये इस तरह बद-इन्तज़ामी।
गया माल भी रह गई फिर भी खामी॥

किसी बात पर डाँट भी दे जिठानी।
खफ़ा और घरवाले हों नागहानी।
हमें गालियाँ दें अगर वृद्ध नानी।
तो उस वक्त करना यही सावधानी—
पलट कर उन्हें कोई उत्तर न देना।
बतङ्गड़ ज़रा बात को कर न देना॥

दबेगा न उत्तर से गुस्सा किसी का।
करेगा मगर काम जलते पै घी का।
नहीं कोई उत्तर खमूशी से नीका।
यहाँ खत्म है टिप्पणी और टीका॥

हराती है सौ को अकेली खमूशी।
कि है शान्ति की ही सहेली खमूशी॥

अगर सास ने शब्द कड़वा कहा है।
तो इसपर बुरा मानना ही बुरा है।
इसे चुप से पीना, इसी में भला है।
कि यह वैद्यरानी की कड़वी दवा है॥

न तब वह कलहरूप सरसाम होगा।
ज़रा देर पीछे खुद आराम होगा॥

समझ लेंगी जब यूँ समझदार तुझको।
करेंगी वो माँ की तरह प्यार तुझको।
अगर आ गया उच्च व्यवहार तुझको।
बना देंगी घर-भर का मुखतार तुझको॥

बड़ा मान घर की अदालत करेगी।
जिठानी भी तेरी वकालत करेगी॥

अगर आ गई बोलनी मीठी बोली।
सुमन-तुल्य है फिर तमञ्चे की गोली।
जो घर में बहू-बेटियों की है टोली।
समझ ले जो तुझसे मिली तेरी हो ली॥

वही धन्य है जिसकी वाणी मधुर है।
ये कुनबे में सत्कार पाने का गुर है॥

है कर्त्तव्य तन-मन से स्वामी की सेवा।
कि है स्वामी-सेवा का फल मिष्ट मेवा।
न गङ्गा न यमुना न सरयू न रेवा।
मगर है यह मन्दाकिनी मुक्ति-देवा॥

पति को जो पूजेगी उद्धार होगा।
इसी घाट तेरा बेड़ा पार होगा॥

है जगदीश से प्रार्थना यह हमारी।
सुहागन रहे तू सदा हे दुलारी!
कटे शीलव्रत धारकर उम्र सारी।
सती गुणवती हो पति को हो प्यारी॥

बढ़े दम्पती प्रेम का ज्ञान निशिदिन।
रहे दो शरीरों में इक जान निशिदिन॥

मैं 'बेताब' हूँ कि समय ने रुलाया।
तथापि मैं खुश हूँ कि यह वक्त आया।
विदा करके तुझको है सन्तोष पाया।
कि था मेरी रक्षा में यह धन पराया॥

हुआ आज वह धन धनी के हवाले।
बस अब वह सँभाले कि ईश्वर सँभाले॥

—बेताब

अथ स्वस्तिवाचनम्

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ १ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ २ ॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना॥ ३ ॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः॥ ४ ॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः॥ ५ ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥ ६ ॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ ७ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ८ ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्न-सस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये॥ ९ ॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥ १०॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये॥ ११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये॥ १२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥ १३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नः कृतादकृतादेन-सस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये॥ १४॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये॥ १५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणम-दितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसम-स्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ १६॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये॥ १७॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये॥ १८॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥ १९॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये॥ २०॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्ववंति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥ २१॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति। सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा॥ २२॥

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशंसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥ २३॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतासऽउद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥ २४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २५ ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥

स्वस्ति नऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्यो॑ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ २९ ॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३० ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥

इति स्वस्तिवाचनम्

अथ शान्तिकरणम्

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रा-वरुणा रातहव्या। शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः। शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्। शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः। शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व१ः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

शं न सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥ १० ॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ११ ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४ ॥

शन्नो वातः पवताꣳ शन्नस्तपतु सूर्य्यः। शन्नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु ॥ १५ ॥

अहानि शम्भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम्। शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्नऽ-इन्द्रावरुणा रातहव्या। शन्न इन्द्रापूषणा वाज-सातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शँयोः॥ १६॥

शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शँयोरभिस्त्रवन्तु नः॥ १७॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ १८॥

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात्॥ १९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमञ्ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २०॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृ-तम्प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २२॥

येनेदम्भूतं भुवनम्भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २३ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतम्प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २४ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २५ ॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।

शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २८ ॥

॥ इति शान्तिकरणम् ॥

ओ३म्
वैदिक विवाह पद्धति
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती